श्री काशी-खण्ड

अध्याय ५९ व ६०

पञ्चनद व बिन्दुमाधव माहात्म्य

... ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥

लेखक
वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

(पञ्चनद में स्नान के पश्चात् महिलाएं दस-दस, बीस बीस के झुण्ड में घाट किनारे अथवा मन्दिरों में जहाँ भी उन्हें बैठने का स्थान मिल जाता है। बैठकर पूजन-आरती करती हैं तथा ये भजन गाती हैं जो हृदय स्पर्शी एवं कर्ण प्रिय होती हैं।)

श्याम झूलैं पलना

श्याम झूलैं पलना,
झुलाओ मेरी सजनी ॥
कौन झूलैं कौन झुलावैं
कौन से झोका दे, श्याम झुलैं...... ॥
...लन पालन
...ोर
...जनी, श्याम झुलैं...... ॥

... आरती

...रौं तुम्हारी ॥
... तूं पटरानी
...द बखानी
... उठै सुरंगा
... सब भंगा
...ी सब काया
... की माया
... गंगा...... ॥

(शेष कवर ३ पर देखें)

(पञ्चनद में स्नान के पश्चात् महिलाएं दस-दस, बीस बीस के झुण्ड में घाट किनारे अथवा मन्दिरों में जहाँ भी उन्हें बैठने का स्थान मिल जाता है। बैठकर पूजन-आरती करती हैं तथा ये भजन गाती हैं जो हृदय स्पर्शी एवं कर्ण प्रिय होती हैं।)

श्याम झूलैं पलना

श्याम झूलैं पलना,
झुलाओ मेरी सजनी ॥
कौन झूलैं कौन झुलावैं
कौन से झोका दे, श्याम झुलैं...... ॥
ालन पालन
ोर
जनी, श्याम झुलैं...... ॥

आरती

करौं तुम्हारी ॥
तूं पटरानी
द बखानी
उठै सुरंगा
सब भंगा
ी सब काया
की माया
गंगा...... ॥

(शेष कवर ३ पर देखें)
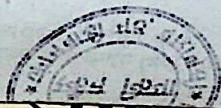
(अध्याय ५९ व ६०)

पञ्चनद (पंचगंगा)

व

बिन्दुमाधव माहात्म्य

लेखक

वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

प्रकाशक :—
श्री भृगु प्रकाशन,
के० ४३।६२, बंगाली बाड़ा,
विश्वेश्वरगंज,
वाराणसी।

मुद्रक :—
मुकुन्ददास गुप्त, 'प्रभाकर'
टाइम टेबुल प्रेस,
बड़ागणेश,
वाराणसी।

मूल्य ०.८० पैसा

हर हर महादेव

बाबा 'विश्वनाथ' के प्रतीक, काशिराज महाराज
'श्रीविभूतिनारायण सिंहजी'
को
सादर समर्पित
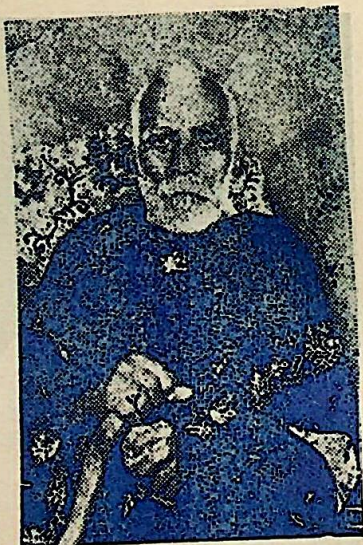
काशी के गौरव वेदमूर्ति
विद्वच्छिरोमणि शास्त्ररत्नाकर पद्मभूषण-पण्डितराज
श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड़

आमुख

एक बार 'जलगाँव' में एक मन्दिर की मूर्ति किसी प्रकार भंग हो गई थी। वहाँ के लोग उसे जल में प्रवाहित कर उसके स्थान पर नयी मूर्ति रख उसका जीर्णोद्धार करना चाहते थे। परन्तु वहीं के एक प्रसिद्ध सज्जन इसके विरुद्ध थे कि नहीं उसी खण्डित मूर्ति की पूजा होनी चाहिये। इस विवादके निवारण के लिए मुझे वहाँ बुलाया गया।

प्रश्न आने पर मैंने 'शास्त्रवचनों' का समर्थन करते हुए और वहाँ की परिस्थिति के अनुसार कहा शास्त्र का मत है कि सर्व लक्षण युक्त, सुन्दर मूर्ति का दर्शन एवं अर्चन करना चाहिए। ऐसा करने से दर्शक के ऊपर उस मूर्ति का वैसा ही लक्षण और प्रभाव पड़ता है और उसके माध्यम से उसके परिवार के अन्य लोगों पर भी वैसी ही छाप पड़ती है।

इसी प्रकार ऋतु-स्नान के पश्चात् साध्वा स्त्री सर्व-प्रथम अपने पतिदेव का दर्शन करना चाहती है जिससे, उससे होनेवाली सन्तति पर उसके पति की छाप पड़े। दैववशात् यदि पति के दर्शन नहीं हो पाते तो वह किसी 'देवी' या 'देवता' का दर्शन करती है ताकि उनका प्रभाव उसकी सन्तान पर पड़े। इसी कारण खण्डित मूर्ति को जल में छिपाकर रखने का विधान है, अन्यथा आगे की सन्तति अपंग होने का भय रहता है।

पहले लोग देवमन्दिरों में समाज का कल्याण चाहने वाली उत्तम कथाओं को कथावाचकों से सुनकर अपने तथा अपने परिवार व समाज के रूप को तद्रूप बनाते थे। अब लोगों को उतना कष्ट उठाने का अवसर नहीं रहा और फलतः उतने कथावाचक भी सुलभ नहीं रहे।

ऐसी स्थिति में 'काशी' में स्थित देवी-देवताओं की तथा उनके स्थानों की ओर उनके दर्शनों से प्राप्त होने वाले कल्याणकारी फलों की कथा, जो कि 'स्कन्दपुराण' के "काशी-खण्ड" में वर्णित है, सर्व-सुलभ करने की ओर श्री वैकुण्ठनाथ उपाध्याय का यह प्रथम प्रयास है। इसमें 'धर्मनद', धूतपापा तथा विन्दुतीर्थ की महिमा और इस क्षेत्र के देव मन्दिरों, सिद्ध, सन्त, महात्माओं के जीवन पर यथासाध्य प्रकाश डाला गया है।

इस पुस्तक के माध्यम से और इसके बाद प्रकाशित होने वाले इसके अन्य भागों के संग्रह से 'आध्यात्मिक काशी', जिसके राजा बाबा विश्वनाथ हैं, का पूर्ण ज्ञान होगा। अतः शास्त्रमर्यादा का पालन करते हुए और देवताओं की पवित्रता को बनाये रखते हुए उन देवी-देवताओं तथा परम पवित्र तीर्थों का दर्शन, पूजन, अर्चन करने से सबका हृदय शुद्ध होगा। इस प्रकार सब सुखी एवं समृद्धिशाली बनकर भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं।

तीर्थों की पूजा तपस्वीजन करते हैं। तीर्थों में महान् कष्ट भोगने का भाव यही होता है कि जिसके जैसे कर्म होते हैं वैसा भोग उसे भगवान् को प्राप्त करने के लिए भोगना पड़ता है। यदि वह भगवान् का भक्त है, नित्य उनकी सेवा, पूजा, दर्शन करता है, तो उसे भगवान् सहज ही प्राप्त होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

वस्तुतः काशी में यह 'पञ्चनद' क्षेत्र बड़ा पवित्र रहा है और आज भी है। यहाँ वर्ष में एक महीना तक प्रातः स्नानार्थियों का मेला लगता है। इस स्थान का सेवन करने से बड़ा पुण्य प्राप्त होता है। इस पवित्र भूमि में बड़े-बड़े धर्माचार्य उत्पन्न हुए हैं और आज भी ढूंढ़ने पर मिलते हैं और इस भूमि पर यज्ञ में एक आहुति एक करोड़ आहुति के समान होती है। अतः काशीवासियों को और बाहर से आने वालों को इस क्षेत्र की परिक्रमा, दर्शन, स्नान, मार्जन, करना चाहिए। यहाँ विद्वानों का सत्संग सदा सुलभ है।

प्रस्तुत पुस्तक घर-घर में रखने योग्य है। क्योंकि नीतिशास्त्र के 'लोक-संग्रह' प्रकरण में कहा गया है कि—'शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद् देवताः सदा' अर्थात् पूजा करने वाला पवित्र हो और अस्तिक भावान्वित हो, तो आपेक्षिक लोक संगठन सिद्ध होगा।

इसीलिए पवित्र तीर्थ स्थानों में सनातनियों की बहुत बड़ी-बड़ी सभाएँ होती हैं, जैसे—'कुम्भ', काशी का 'नाटी इमली' का भरत-मिलाप, 'तुलसीघाट की नागनथैया, जैसे मेलों में जिसमें राजा-महाराजा आदि पधार कर अपने को पवित्र समझते हैं तथा सम्मान को प्राप्त करते हैं।

भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना है कि श्री वैकुण्ठनाथजी पर वह सदा वरदहस्त रखें और उन्हें शक्ति-प्रदान करें कि वह सम्पूर्ण 'काशी-खण्ड' इसी प्रकार लिख सकें!

श्री राजेश्वरशास्त्री द्राविड़

निवेदन

काशी की महिमा का वर्णन जितना भी किया जाय थोड़ा है। इसे 'आनन्दवन' एवं 'वाराणसी' नाम से जाना जाता है। इसकी महिमा का वर्णन स्वयं भगवान् 'विश्वनाथ' ने एक समय भगवती 'पार्वती जी' से किया था, जिसे उनके पुत्र कार्तिकेय जी ने अपनी माँ की गोदी में बैठे-बैठे सुना था। उसी महिमा का वर्णन अगस्त्य ऋषि से कार्तिकेय जी ने किया और वही कथा 'स्कन्द पुराण' के अन्तर्गत 'काशीखण्ड' में वर्णित है।

जिस काशी की महिमा का वर्णन देवाधिदेव 'महादेव' ने तथा 'विष्णु' भगवान् ने स्वयं किया है उसे हम सबको भी पढ़ना चाहिए और उसका ज्ञान होना चाहिए। इसी निमित्त प्रस्तुत ग्रंथ के रूप में केवल दो अध्यायों (५९ व ६०) की कथा इसमें दी गई है।

काशी की वर्तमान दशा का वर्णन किस मुँह से किया जाय समझ में नहीं आता। आप सब स्वयं देख व समझ लें। सम्भव है कि मैं लिखने में अधिक संकोच कर रहा हूँ, इसके लिए मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे। जो कुछ इस पुस्तक में 'कथा प्रसंग' के अतिरिक्त लिखा गया है उसे उन-उन स्थानों पर स्वयं जाकर देखा है और वृद्धजनों से पूछा भी है, वही बातें लिख रहा हूँ। इसमें अपनी ओर से कुछ भी नहीं लिखा है। जो कुछ भी लिखा हूँ, वर्तमान काशी को देखकर अपनी अन्तर्वेदना व्यक्त की है। यदि इससे तथा इसमें वर्णित कथा से आप सबका कुछ लाभ अथवा भला हो सके तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

आज काशी का स्वरूप क्या है, उसकी दशा क्या है उसके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है आदि पर विचार करना अति आवश्यक है। आज हम देखते हैं कि काशी में कुछ सौ मन्दिरों में तो जल, अक्षत, बताशा, इलायचीदाना, लड्डू, पेड़ा, ठोकवा, सांठ और कहीं केवल बिल्वपत्र मात्र चढ़ता है परन्तु हजारों मन्दिर ऐसे हैं जहाँ के देवी-देवता, अव्यवस्था और समाज की उपेक्षा

के कारण हीन-दीन दशा में पड़े हैं। मालूम होता है, कि इन सबका प्रकोप ही हमें नाना कष्टों को दे रहा है। हमने नहीं, हमारे पूर्वज, सिद्ध, सन्त-महात्माओं ने इन्हें सादर स्थापित किया था। जबतक वे रहे तबतक इनकी सेवा-पूजा की और सुख भोगकर मरने पर वे तो मोक्ष के अधिकारी हुए इसमें कोई सन्देह नहीं, पर उनके इष्टदेव की आज यह दुर्दशा वस्तुतः हम सबके लिए डूब मरने की बात है। इन उपेक्षित मन्दिरों के रख-रखाव तथा पूजा-अर्चना की व्यवस्था हम सबको मिलकर करनी है। 'काशीवासी' को तो सेवा करनी ही है क्योंकि वे यहाँ के देवी-देवताओं के पहरेदार हैं पर समस्त सनातनधर्मी एवं आस्तिक लोगों का, चाहे वे भारत में हों अथवा विदेशों में उनका सहयोग प्राप्त हुए बिना यह कार्य सम्पन्न होना असम्भव है।

इसी उपेक्षा के परिणाम-स्वरूप कितने देव-मन्दिर लुप्त हो गये, उनकी मूर्तियाँ लुप्त हो गयीं, उन्हें आज पूछने पर कोई बतलाने वाला नहीं बचा कि वे मन्दिर, कुण्ड, बावली व कूप कहाँ गये। यदि यही स्थिति रही तो जो कुछ बचे-खुचे हैं वे सब भी नष्ट हो जायेंगे और अगले ५० या १०० वर्षों में इन्हें भी कोई बतलाने वाला न रहेगा।

यह साधारण-सी समझ की बात है कि जब देवी और देवताओं की पूजा-आरती से उनका हम सत्कार नहीं कर सकते तो फिर वे हमारी क्यों चिन्ता करने लगे? यदि हम उनके स्थानों की सुरक्षा नहीं कर सकते तो हमारे रहने का ठिकाना कौन लगा सकता है? हर व्यक्ति को चाहिए कि अपनी कमाई में से अधिक नहीं तो १ या २ प्रतिशत ही सही निकालकर इस कार्य के निमित्त अर्पण करें।

अनेक धनी-मानी या श्रद्धालु जन कार्य कर रहे हैं परन्तु इस दिशा में आज हम सबको सोचना, समझना और करना पड़ेगा, तभी उक्त पुण्य कार्य में हम लग सकेंगे और भगवान् का हमें आशीर्वाद प्राप्त होगा। हम, हमारा परिवार, हमारे इष्ट मित्र सदा सुखी रहेंगे।

चारों पुरुषार्थों में धर्म, अर्थ, काम तो हर स्थान पर कर्म करने पर

मिलता है परन्तु अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' तो काशी में ही सहज में मिलता है। यह अकाट्य सत्य है। ऐसी काशी को 'मोक्ष' देनेवाली 'काशी' बनाना हमारा कार्य है। इसे बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली नहीं बनने देना चाहिए। यहाँ के लोगों को 'शिव' या 'श्याम' का प्रेमी होना चाहिए, सिनेमा प्रेमी नहीं, क्योंकि यही तो सर्वनाश कर रहा है। काशी के आध्यात्मिक गौरव का रक्षण करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

काशी प्रकाशिका है। यहीं से समस्त भक्तों एवं भगवत् प्रेमियों को पूर्णता का अनुभव हुआ है अतः यहाँ के निवासियों को अपने पर विचार करना होगा। उन्हें गंगा स्नान और देवमन्दिर का दर्शन करना होगा, तभी हृदय का मल स्वच्छ होगा, हम एक-दूसरे से प्रेम का पाठ सीखेंगे, इन देवी-देवताओं के मन्दिरों के सत्संग से।

काशी में 'परमार्थ' का व्यापार चलता है। जहाँ हर व्यवसाय की उन्नति की ओर हम ध्यान दे रहे हैं वहीं इस 'परमार्थ' के व्यापार को भी बनाये रखें। इसके लिए परम आवश्यकता है उसे समझने और परखने की। अतः 'काशी' क्या है? इसके किस भाग की क्या महत्ता है? इसके किस कोने का क्या महत्त्व है? इसका रहस्य और तत्त्व क्या है? यदि इसे हम जानना और समझना चाहते हैं तो हमें निश्चय ही 'स्कन्द-पुराण' के अन्तर्गत वर्णित 'काशीखण्ड' तथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणान्तर्गत 'काशी रहस्य' को पढ़ना पड़ेगा। जबतक इन ग्रन्थों को पढ़ेंगे नहीं, उसमें वर्णित स्थानों को देखेंगे नहीं, उसके रहस्यों को समझेंगे नहीं, कि कौन 'देव' या 'देवी' किस स्थान पर क्यों हैं; वहीं पर उनके निवास करने का क्या रहस्य है; आदि बातों को समझेंगे नहीं, तब तक उक्त बातों का उत्तर मिलना असम्भव होगा।

फलतः आधुनिक ढंग से 'काशीखण्ड' को भाषा में सर्व सुलभ करने का संकल्प लेकर यह प्रथम प्रयास कर रहा हूँ।

'काशीखण्ड' में १०० अध्याय हैं तथा ११,००० से ऊपर श्लोक हैं। इसका प्रकाशन एक साथ करना सम्भव नहीं रहा, अधिक परिश्रम एवं व्यय साध्य समझ सम्पूर्ण को अंश-अंश कर प्रकाश में लाना ही मैंने उचित समझा है।

आदि या अन्त के झंझट में न फँसकर मैंने मध्य का सहारा लिया। काशी दो भागों में बँटी है। एक को 'शिवकांची' अर्थात् 'शिवकाशी' और दूसरी को 'विष्णुकांची' अर्थात् 'विष्णुकाशी' कहते हैं। इन दोनों का केन्द्र-विन्दु, पंचनद या बिन्दुमाधव का 'बिन्दुतीर्थ' पंचगंगा घाट है। पंचगंगा घाट से पश्चिम ओर अस्सी संगम तक 'शिवकाशी' और पंचगंगा घाट से पूर्व 'आदिकेशव' तक को 'विष्णुकाशी' कहा जाता है।

इस प्रकार 'काशी' में कैलाश और वैकुण्ठधाम दोनों हैं। यदि आप काशी के राजा बाबा 'विश्वनाथ' के मन्दिर में जायँ तो सिंहद्वार से भीतर घुस मण्डप में पहुँचने पर देखेंगे कि दायीं ओर 'काशी अधिपति' 'विश्वनाथ' कैलाशकक्ष में विराज रहे हैं और बायीं ओर 'विष्णु भगवान्' अपने वैकुंठ-कक्ष में विराज रहे हैं।

पंचगंगा घाट पर गंगा की ओर मुख करके खड़े होने पर वही दाहिनी ओर अस्सी तक 'शिवकाशी कैलाश' मिलेगा और बायीं ओर विष्णु का 'वैकुंठधाम'।

इसी केन्द्रबिन्दु पंचगंगा घाट, जिसे सत्ययुग में 'धर्मनद', त्रेता में 'धूतपापा', द्वापर में 'बिन्दुतीर्थ', और कलियुग में 'पंचनद' नाम से जाना जाता है तथा इसी प्रकार वहाँ स्थित उस स्थान के देवता विष्णु, सत्ययुग में 'आदि माधव', त्रेता में 'अनन्त माधव', द्वापर में 'दामोदर', और कलियुग में 'विन्दुमाधव' नाम से विख्यात हैं। ऐसे स्थान का माहात्म्य और उसकी मर्यादा का वर्णन सर्व-प्रथम करना मैंने उचित समझा।

इसके पश्चात् एक पुस्तक 'शिवकाशी' की कथा पर और दूसरी 'विष्णुकाशी' की कथा पर साथ-साथ लिखने का प्रयास करने का भी मैंने संकल्प लिया है।

भगवान् 'विश्वनाथ' का वरदहस्त तथा आप सबका सहयोग, सहायक होगा। यही भाव हृदय में रख आप सबकी सेवा करना मैंने अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा है। आशा है आप सब भक्तजनों का आशीर्वाद प्राप्त होगा।

—वैकुण्ठनाथ उपाध्याय

धन्यवाद

इस पुस्तक के प्रकाशन में हमें जिन महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है उनका उल्लेख करना हम अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते हैं।

श्री मन्महाराज काशीराज के हम चिरऋणी रहेंगे, जो उन्होंने इस पुस्तक का अपने कर-कमलों द्वारा प्रकाशनोंद्घाटन करना स्वीकार कर हमें कृतार्थ किया।

हम प्रातः स्मरणीय वेदमूर्ति पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ को प्रणाम करते हुए प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार उन्होंने इस पुस्तक के लिए मार्ग निर्देश किया है, उसी भाँति उनकी कृपा सदा बनी रहे।

सर्व श्री पं० जनार्दन शास्त्री पाण्डेय, पं० माधवप्रसादजी, पं० विश्वनाथ शास्त्री दातार, डा० भानुशंकर मेहता एवं पं० कौस्तुभानन्द पाण्डेय का हम विशेष रूप से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने पाण्डु लिपि को शुद्ध करने तथा मुद्रण की अशुद्धियों को दूर करने में पूर्ण सहयोग दिया है। छपाई कार्य में बाबू मुकुन्ददास गुप्त टाइम टेबुल प्रेस व श्री प्रमोदकुमार-श्री प्रेस को धन्यवाद देता हूँ। इस अवसर पर रेखा चित्र के निर्माता—तरुण चित्रकार श्री अरुण क्षीरसागर को बधाई देता हूँ, जिन्होंने बड़ी लगन से चित्र तैयार किये। श्री पापुलर ब्लाक वर्क्स ने समय पर सभी ब्लाक तैयार कर हमें सहयोग दिया। अतः वह भी धन्यवाद के पात्र हैं। श्री तैलंग स्वामी मठ, श्री वल्लभ राम शालिग्राम सांगवेद विद्यालय, रामानुज विद्यालय, पं० हरिनाथ जी वैद्य, रामनाथ व्यास, मन्नूलाल, सागरमल बजाज तथा सर्व श्री पं० रविनाथ, नारायण, हरिशंकर, रामजी, हरीजी, काशीजी, रामाजी, परमानन्द, मन्नीजी तिवारी, केशवराम, भोलानाथ, हरिहर, लक्ष्मीशंकर, केदारनाथ, दामोदरजी, शिवनाथ, मुन्नूजी, देवनाथ, कैलाशनाथ, भैरवनाथ, जीवनजी, चिन्तामणिजी पं० मन्नी दूबे पं० शम्भजी, पं० छोटेलालजी (पंचगंगा घाट के पुरोहितों), नागरीप्रचारिणी सभा, कृष्णदास अढ़तिया, शिवराजजी तथा उर्मिल पिक्चर्स का आभारी हूँ, जिन्होंने पूर्ण योगदान दिया।

भगवान् विश्वनाथ सदा सहाय रहें। भगवान् बिन्दुमाधव को प्रणाम करते हुए हम पुनः सबका अभिवादन करते हैं।

रामनारायण उपाध्याय

विषय-सूची

आमुख, निवेदन व धन्यवाद

१–पञ्चनद (पंचगंगा घाट) माहात्म्य १

२–बिन्दुमाधव माहात्म्य १८

३–यात्रा विवरण ३३

४–कार्त्तिक माहात्म्य ३७

५–पंचनद तीर्थ (पंचगंगा घाट) पर
महापुरुषों की वास भूमि ४८
(स्वामी रामानन्द, महाप्रभूजी, सन्त एकनाथजी,
महात्मा तैलंग स्वामी, समर्थ गुरू रामदासजी)

६–बाला जी ६७

७–बिन्दुमाधव का मन्दिर ७०

८–स्वामी ब्रह्मानन्द का मठ ७५

९–काशी नरेश का स्नान ७६

१०–देववाणी ७७

—:o:—

चित्र-सूची

भगवान् विश्वनाथ, पार्वती से काशी की महिमा कहते हुए,
पार्वती की गोद में कार्त्तिकेय जी !

(मुख पृष्ठ)

१–काशी नरेश, २–पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्राविड़, ३–श्री मंगला गौरी, ४–मयूखादित्य, ५–श्री हनुमानजी, ६–कार्त्तिवेय जी के समक्ष अगस्त्य ऋषि अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ, ७–वेदशिरा ऋषि के समक्ष शुचि अप्सरा, ८–वेदशिरा ऋषि के समक्ष धूतपापा, ९–तपस्विनी धूतपापा व ब्रह्मा जी, १०–धर्मराज व धूतपापा, ११–पंचनद (गंगा-यमुना-सरस्वती व धूतपापा-किरणा) तट पर भगवान् विष्णु, १२–पंचगंगा घाट पर तर्पण व श्राद्ध-कर्म, १३–कार्त्तिकेय व अगस्त्य ऋषि, १४–अग्निबिन्दु ऋषि व भगवान् विष्णु, १५–श्री मंगला गौरी, १६–मयूखादित्य, २७–श्री वल्लभाचार्य, १८–श्री गोस्वामी तुलसीदास, १९–शिवलिंगधारी श्रीकृष्ण, २०–बाबा तैलंग स्वामी तथा श्री मंगला काली, २१–महाप्रभूजी, २२–श्री कृष्ण, २८० वर्षीय बाबा तैलंग स्वामी और विश्वनाथ।

—०—
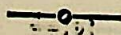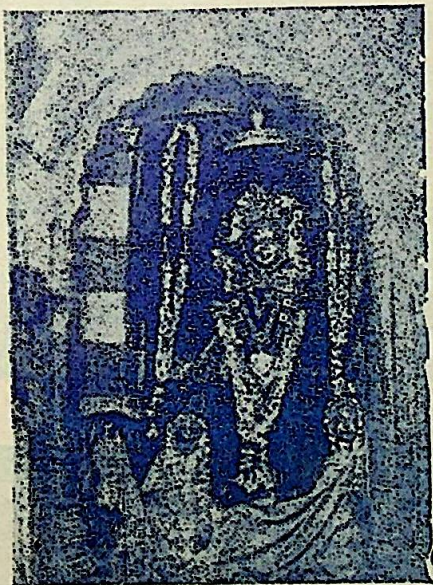
श्रीमङ्गलागौरी

श्रीमङ्गलागौरी के मन्दिर में
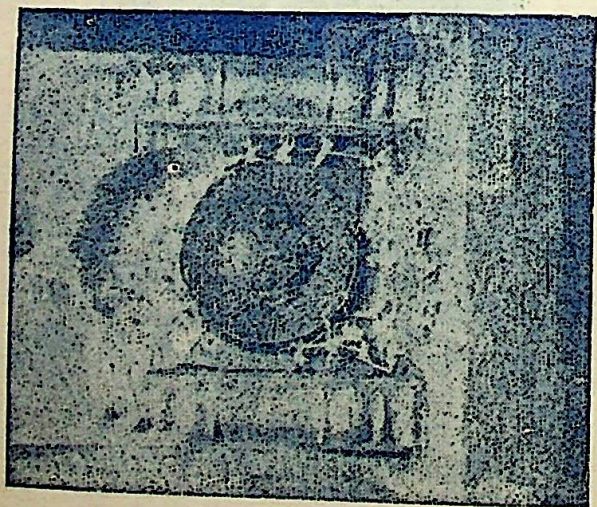
श्रीमयूखादित्य—इस मूर्ति से बिना किसी स्रोत के निरन्तर जलस्राव होता रहता है।
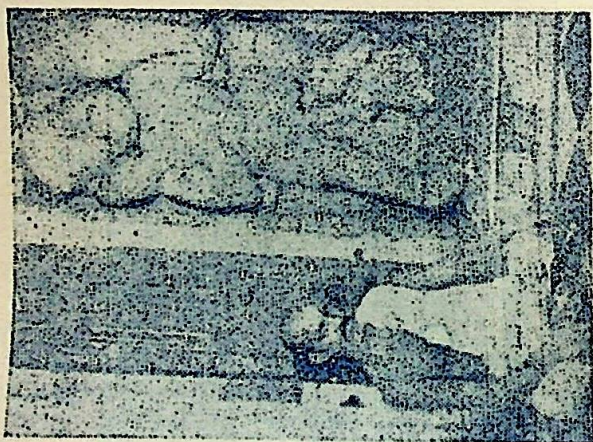
श्री 'हनुमानजी'—समर्थगुरु रामदासजी द्वारा स्थापित चरणों में मन्दिर के सेवक पं० भैरवनाथजी

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

पंचनद् (पंचगंगा घाट) माहात्म्य

श्री काशीखण्ड–अध्याय-५९

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गंगां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥

———※———

अगस्त्य ऋषि ने षडानन कुमार कार्तिकेय की वन्दना की और प्रार्थना करते हुए अपनी जिज्ञासा प्रकट की कि माया करके श्री विष्णु

भगवान् ने ब्राह्मण का रूप धरकर काशी में पंचनद तीर्थ को स्थायी निवास के लिए क्यों चुना ? भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक के बीच में 'काशी' परम पवित्र मानी गई है। ऐसी पवित्र काशी में भी विष्णु भगवान् ने पंचनद तीर्थ को ही क्यों श्रेष्ठ स्थान माना ?

हे षडानन ! कृपापूर्वक यह बतायें कि उसका नाम पंचनद क्यों पड़ा और वह सब तीर्थों में अधिक पावन अर्थात् पवित्र क्यों माना गया ? साथ ही इस रहस्य को भी स्पष्ट करें कि जो अपनी लीला से समस्त ब्रह्माण्ड के निर्माण कर्ता, पालन कर्ता एवं उसके संहार कर्ता हैं वही जगन्नाथजी बिना रूप के होते हुए भी रूपधारी, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त, निराकार होते हुए भी साकार रूप हुए, निष्प्रपंच होते हुए भी प्रपंच में पड़े, जन्म और नाम से रहित होते हुए भी नामधारी बने, स्वयं निरवलम्ब होते हुए भी सब इन्द्रियों के स्वामी बने एवं चरण न होते हुए भी सर्वत्र घूमनेवाले अन्तर्यामी अपने सर्वव्यापी रूप को बटोर कर सर्वात्मभाव से उस पंचनद तीर्थ पर क्यों जाकर ठहरे ? अस्तु, हे षडानन कार्तिकेयजी ! इस सम्बन्ध में आपने पचवदन महादेवजी से जो कुछ सुना है, कृपा पूर्वक हमसे कहें।

अगस्त्य ऋषि की बातें सुनकर स्कन्दजी ने सर्व प्रथम भगवान् महेश्वर का ध्यान कर उन्हें प्रणाम किया और फिर सब पापों का हरण करनेवाली तथा समस्त कल्याण करनेवाली उत्तम कथा का वर्णन करने लगे।

पंचनद तीर्थ

काशी में किस प्रकार पंचनद तीर्थ प्रसिद्ध हुआ और पंचनद नाम लेते ही किस प्रकार पाप हजारों टुकड़ों में बिखर जाता है, इस प्रसंग को कहते हुए कार्त्तिकेयजी ने कहा कि 'स्वयं तीर्थराज प्रयाग भी कार्त्तिक मास में यहाँ आकर वास करते हैं। तीर्थराज प्रयाग के बल

पर ही समस्त तीर्थ अपने-अपने यहाँ लोगों के पापों का हरण करते हैं और उन्हें पाप से मुक्त करते रहते हैं। तत्पश्चात् समस्त तीर्थ माघ मास में मकर के सूर्य होने पर तीर्थराज प्रयाग के पास आकर अपने में एकत्रित बड़े-बड़े पापियों के पापों को उन्हें सौंपते हैं और फिर कार्त्तिक मास में उन सब पापों को बटोर कर तीर्थराज प्रायाग काशी में आते हैं, और पंचनद तीर्थ में एक दिन स्नान कर उन्हें यहाँ छोड़ जाते हैं।

पंचनद की उत्पत्ति

हे मित्रावरुणनन्दन ! अब आपसे पंचनद तीर्थ की उत्पत्ति कैसे हुई, यह कह रहा हूँ। पूर्वकाल में भृगुवंश में 'वेदशिरा' नामक एक मुनि बड़े तेजस्वी, तपस्वी, मूर्त्तिमान् वेद स्वरूप, उत्पन्न हुए थे। इस
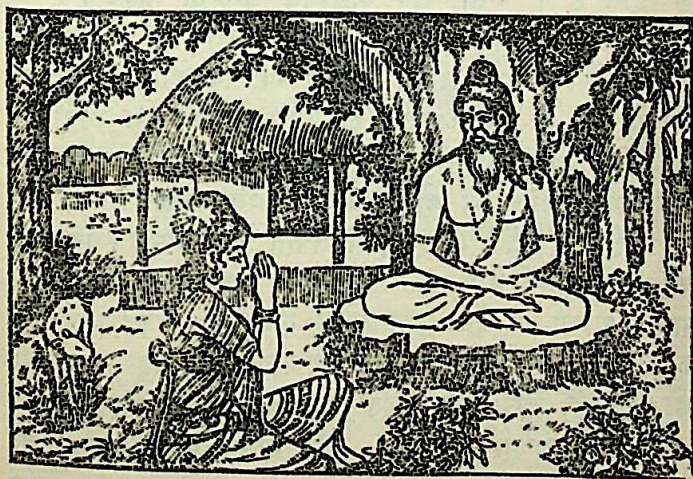
स्थान पर वे घोर तप कर रहे थे। दैवात् एक दिन मुनि के समक्ष एक परम सुन्दरी 'शुचि' नामक श्रेष्ठ अप्सरा आई। उसे देखते ही

मुनि का मन चलायमान हो गया। उनका ब्रह्मचर्य तुरन्त भंग हो गया। मुनि के शुक्र को वाहर आया देख कर 'शुचि' शाप के भय से बहुत डरी। डरते-डरते उसने दूर से ऋषि को प्रणाम किया और काँपती स्वर से बोली 'हे तपोनिधि इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। हे क्षमाशील, आप मुझे क्षमा करें, क्योंकि तपस्वी लोग क्षमा की मूर्त्ति होते हैं। मुनियों का हृदय कमल के पत्तों के समान कोमल होता है और स्त्रियों का मन स्वभाव से कठोर होता है। इस प्रकार मुनि ने उस 'शुचि' अप्सरा की विनती सुन अपने क्रोध रूपी नदी की तेज धारा को विवेक रूपी बाँध से रोकते हुए, प्रसन्न मन से कहा 'अरे शुचि, तुम वास्तव में शुचि (निर्दोष) हो, हे सुन्दरी ! इसमें न तो मेरा कोई दोष है और न तुम्हारा ही कोई दोष है। रमणी (स्त्री) अग्नि ज्वाला के समान और पुरुष मक्खन के समान होते हैं। ऐसी वातें अनजान लोग ही कहते हैं। पर विचार करने पर इनमें वड़ा अन्तर पाया जाता है। मक्खन अग्नि के ताप से पिघलने लगता है, पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पुरुष दूर से स्त्री का नाम लेते ही पिघलने लग जाता है। अस्तु हे शुचि ! तुम भयभीत न हो। तुम्हारा मन शुद्ध है। तुम मुझे क्रुद्ध करने यहाँ नहीं आयी हो। अब मेरा रेत स्खलन तो हो गया है इसमें कोई बात नहीं है। इच्छा के बिना यदि ऐसा स्खलन हो जाय तो उससे मुनियों के तप की उतनी हानि नहीं होती, जितनी कि क्षणमात्र में अन्धा कर देने वाले क्रोध रूपी शत्रु से हो जाती है। क्योंकि क्रोध करने से, वड़ा कष्ट उठा कर वटोरी हुई तपस्या का ऐसे नाश हो जाता है, जिस प्रकार वादल घिर आने से सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश प्रायः लुप्त हो जाता है। क्रोध अनर्थ करने वाला होता है अतः क्रोध करने से पुरुषार्थों (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) की प्राप्ति नहीं होती। जिस प्रकार दुष्ट लोगों की वढ़ती होने पर साधुजनों की बढ़ती घटने लगती है। जब कि मन क्रोध की ओर खिंच जाता

है, तब मनोज (काम) कहाँ से उत्पन्न हो सकता है। ठीक इसी प्रकार हम देखते हैं कि जब राहु चन्द्रमा को पूर्ण रूप से ग्रस लेता है तो उसकी चन्द्रिका (तेज या प्रकाश) लुप्त हो जाती है और फिर जब क्रोध रूपी दावानल दहकने (भभकने) लगता है तो उसमें शान्ति रूपी वृक्ष कैसे बच सकता है। भला कभी कहीं किसी ने सिंह से हाथी के बच्चे की रक्षा होते देखी है। अतः बुद्धिमानों को चाहिये कि चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) और शरीर को नष्ट करने वाले क्रोध का सदा परित्याग करें। इसलिये हे कल्याणी, शुचि ! अब तुम्हें ऐसी स्थिति में जो करना चाहिए उसे करो और वह यह कि हम लोगों का वीर्य अमोघ होता है अतः तुम इसे धारण कर इसकी रक्षा करोगी तो तुम्हें एक कन्या रत्न की प्राप्ति होगी।'

मुनि की ऐसी बातें सुनकर मानों शुचि का नया जन्म हुआ हो। उस अप्सरा ने मुनिवीर्य को 'महाप्रसाद' समझकर पान कर लिया अर्थात् ग्रहण कर लिया। फिर क्या था, वह वहीं रहने लगी और समय आने पर उसे नयनों को आनन्द देनेवाली, परम सुन्दरी, रूप की खान जैसी कन्या उत्पन्न हुई। फिर वह अप्सराओं में श्रेष्ठ शुचि उस कन्या को वहीं आश्रम में वेदशिरा मुनि के पास छोड़कर अपने स्थान को चली गयी। कन्या का नाम मुनि ने 'धूतपापा' रखा।

धूतपापा

इसके बाद वेदशिरा मुनि ने अपने आश्रम की हरिणी के दूध से उस बालिका को पाला। मुनि ने यथार्थतः उस कन्या का नाम धूतपापा रखा, क्योंकि जिसका नाम उच्चारण करने मात्र से पातकावली (पापों की पंक्ति) काँपने लगती है ऐसी ही वह कन्या थी। सर्व लक्षण एवं शोभा सम्पन्न उस कन्या को क्षणभर के लिए भी मुनि अपनी गोद से अलग नहीं करते थे। उसे बड़े स्नेह से वह

पालने लगे। जिस प्रकार रात्रि में 'चन्द्रकला' को बढ़ते देखकर समुद्र प्रसन्न होने लगता है उसी प्रकार मुनि भी उस कन्या को दिन प्रति-दिन बढ़ते देखकर प्रसन्न होने लगे। जब वह कन्या आठ वर्ष की हुई तब मुनि उसे किसी को देने की बात सोचने लगे और उन्होंने उस कन्या ही से पूछा—'अयि महाभागे! सुन्दर नेत्रवाली पुत्रि! धूतपापे! यह तुम्हीं बताओ कि तुम्हें किस वर के हाथों सौंपकर अपने को धन्य करूँ।'
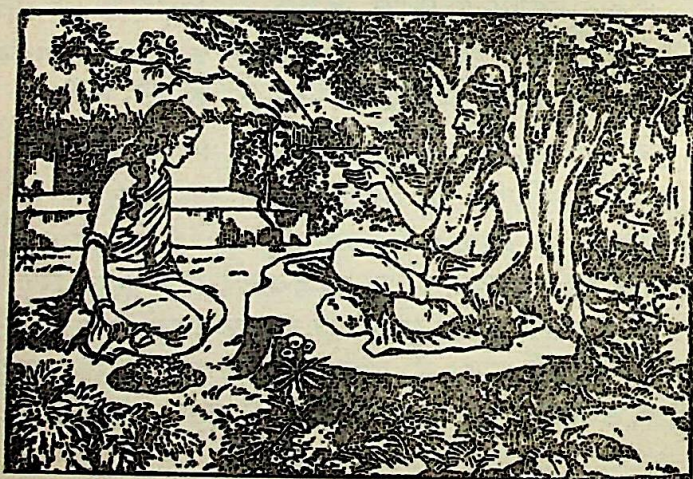
इस प्रकार पिता के वचन सुनकर उसने नीचे मुख करके कहा—'पिताजी! यदि आप मुझे किसी सुन्दर वर को देना चाहते हैं तो मैं जिसे कहती हूँ उसी को आप मुझे समर्पण करें। चूँकि आप भी उसे प्रसन्न करेंगे, अतः कृपापूर्वक ध्यान से सुनें कि 'मेरा पति कैसा हो?' धूतपापा ने कहा—'वह ऐसा हो जो सबसे अधिक पवित्र हो और सबके नमस्कार करने योग्य हो, जिसे सब लोग चाहते हों तथा जिससे समस्त सुखों का उदय होता हो, जो कभी नष्ट न होवे और

सदा मेरा साथी बना रहे। इस लोक में अथवा परलोक में भी हर विपत्तियों के समय मेरी रक्षा कर सके. जिसके द्वारा हमारे सभी मनोरथ पूर्ण हो सकें। जिसके साथ में रहने से मेरा सौभाग्य नित्य-प्रति बढ़ता रहे और उसकी सेवा करने से मुझे कहीं कोई भय न हो। वह ऐसा हो जिसका नाम लेते ही कोई कुछ न कर सके। और यह सब चौदहों भुवन उसके आधार पर ठहरे हों। इस प्रकार का जो भी गुणी हो, हे पिताजी उसे ही आप मुझे सौंपें, तभी मुझे और आपको भी सुख मिलेगा।'

धूतपापा की यह सारी बातें सुनकर वेदशिरा मुनि बड़े प्रसन्न हुए और अपने को तथा अपने पूर्व पुरुषों को धन्य माना कि ऐसी कन्या रत्न मेरे वंश में उत्पन्न हुई। इसमें कोई सन्देह अब नहीं रह गया कि यह अवश्य ही 'धूतपापा' है नहीं तो इसकी ऐसी बुद्धि कैसे होती ? अस्तु अब ऐसा गुणी व्यक्ति कौन हो सकता है ? ऐसा विचार मुनि जी करने लगे। वह सोचने लगे कि ऐसा व्यक्ति तो बड़ा ही पुण्य कमाने और उसके उदय होने पर ही प्राप्त हो सकता है। यह सब सोचते-सोचते वेदशिरा मुनि ने थोड़ी देर के लिए मन को समाधि में लगा लिया। फिर अपनी ज्ञान दृष्टि से उपरोक्त गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को देखकर अपनी कन्या से कहने लगे—

'बेटी ! कल्याणी ! सुनो। हे बुद्धिमति ! तुमने जैसा कहा है वैसा गुणवान् वर तो अवश्य है परन्तु वह बिना परिश्रम अथवा प्रयास के नहीं मिल सकता। अतः तुम किसी उत्तम तीर्थ में तपस्या करो तपस्या रूपी मूल्य चुकाने पर ही वह तुम्हें उपलब्ध हो सकेगा। बेटी ! वह वर बिना तुम्हारी तपस्या के—धन, सम्पत्ति, हमारी और तुम्हारी कुलीनता, वेद अथवा शास्त्रों के अध्ययन, ऐश्वर्य, तुम्हारे शरीर की सुन्दरता, बुद्धि-वैभव, या पराक्रम के बल से कभी नहीं मिल सकता। हाँ, वह तुम्हारी चित्त शुद्धि, इन्द्रियों की विजय, दम, दान और दया से पूर्ण घोर तपस्या करने से ही प्राप्त हो

सकता है अन्यथा तुम्हारे मनोनुकूल योग्य वर मिलना कठिन है।'

पिता के इन वचनों को सुन कर धूतपापा दृढ़ तपस्या करने के लिए तैयार हो गयी।

स्कन्दजी, अगस्त्य ऋषि से कहने लगे–कि पिता की आज्ञा प्राप्त कर वह कन्या परम पावन काशी क्षेत्र में तपस्वियों के लिए भी असाध्य कठोर तपस्या करने लगी। स्कन्दजी आश्चर्य चकित होकर कहनें लगे कि ओह! मनुष्य जाति का असीम धैर्य यहाँ देखने को मिलता है। कहाँ तो वह अत्यन्त सुकुमारी कन्या और इतना कठोर तप करना धैर्य की सीमा के बाहर की बात है। वर्षा-ऋतु में तेज वायु के साथ घनघोर वर्षा होने पर अनेक रातों को उसने शिलाखण्डों पर वैठे-वैठे विता दिया, मेघों के घोर गर्जन तथा विजली की गड़गड़ाहट भी उसे न डिगा सकी। अन्धेरी रात में दामिनी (विजली) की वह दमक उस तपोवन में मानो उसकी तपस्या की टोह ले रही थी। ग्रीष्म ऋतु (गर्मी) मानो आप ही कुमारी के तप के व्याज से उस तपोवन में पाँचों अग्नियों को रखकर तपस्या कर रही थी। वह लड़की पंचाग्नि के ताप से अत्यन्त प्यासी होने पर भी कुश के अग्रभाग से गिरे जल विन्दु को भी कदापि ग्रहण नहीं करती थी। शीतकाल (हेमन्त-ऋतु) में वह बिना कुछ ओढ़े केवल एक वस्त्र में शरीर के रोंये के सहारे रातें विताती थी। शिशिर ऋतु में जब वह जल में बैठी हुई तप करती रही तो उस समय सारस आदि पक्षी लोग समझते रहे कि आज यह कौन-सी कमलिनी खिल पड़ी है। जब कि वसन्त-ऋतु में तपस्वी मुनियों के मन भी राग में चलायमान हो जाते रहे तब उस वाला के ओष्ठ पल्लव के राग को मानों आम्र पल्लव चुराते दीख पड़ते थे। वसन्त में वनवासिनी हो, कोयलों को कुहुक सुनकर भी वह अपनी तपस्या में मग्न रहती थी। इसी प्रकार शरद-ऋतु में भी वह कन्या मानों अपनी अधरकान्ति को दुपहरिया के पुष्प के पास और अपनी मन्द चाल को 'कलहंस' के पास धरोहर

रख घोर तपस्या करती रही। तपस्या में लीन वह धूतपापा अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिए मात्र वायु का सेवन करती रही। जिस प्रकार 'मणि' सान पर चढ़कर तराशे जाने पर अधिक मूल्यवान् हो जाती है उसी प्रकार वह बाला तपस्या के कारण दुबली-पतली होकर भी अत्यन्त उज्ज्वल एवं तेज की कान्ति से दिव्य दिखाई देती थी।

ब्रह्मा का वरदान

उत्तम पति की अभिलाषिणी धूतपापा की इस शुद्ध एवं घोर तपस्या को देखकर ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसके पास जाकर बोले--'हे सुप्रज्ञे! मैं प्रसन्न हूँ, तू वर माँग।' इतना पवित्र शब्द जब धूतपापा के कान में गया तो उसने अपने नेत्र खोले और अपने सामने हंस पर विराजमान ब्रह्माजी को देख उन्हें प्रणाम कर

दोनों हाथ जोड़े कहने लगी—'हे वर को देनेवाले! पितामह! यदि मैं इस योग्य हूँ कि आप मुझे वर दें तो आप समस्त पवित्रों से भी पवित्र मुझे अत्यन्त पवित्र कर दें।' ब्रह्माजी ने उसके मनोरथ को सुन

हंस से उतर कर कहा कि—'धूतपापे ! इस संसार में जितने भी पवित्र हैं तू मेरे वरदान से उनसे भी अधिक पवित्र हो जा। हे बेटी ! स्वर्गलोक और मृत्युलोक एवं अन्तरिक्ष इन सब में पवित्र करने वाले साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं पर मेरे वचन से वे सभी तीर्थ तुम्हारे शरीर के एक-एक रोम में वास करेंगे और तुम उन सबकी अपेक्षा परम पावनी हो जाओगी !' इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और वह धूतपापा भी अत्यन्त निर्मल हो, अपने पिता वेदशिरा के पास उनकी पर्णकुटी पर जा पहुँची।

धर्मराज से वार्ता

धूतपापा की तपस्या के वशीभूत होकर कुछ दिनों के बाद स्वयं भगवान् धर्मराज ब्राह्मण वेष में उस स्थान पर आये जहाँ पर्णकुटी के आँगन में वह बाला खेल रही थी। उसे इस अवस्था में देख, धर्म बोले—'हे सुश्रोणि ! कृशोदरी ! शुभानने ! विशालाक्षो ! मैं तुम्हारी रूपसम्पत्ति से मोहित (क्रीत) हो गया हूँ, अतः तुम अपने को मुझे एकान्तदान करो। अरे सुन्दर नयन वाली (सुलोचने) ! तुम्हें प्राप्त करने के लिए मुझे काम सता रहा है' इस प्रकार बारम्बार एक अज्ञात कुलशील व्यक्ति के कहने पर धूतपापा ने कहा—'रे दुर्मते ! मुझे दान करनेवाले मेरे पिता जीवित हैं। तुम उन्हीं से जाकर प्रार्थना करो, क्योंकि 'कन्यादान' करने का अधिकारी पिता ही होता है यह 'सनातन-धर्म' की बात पहले से चली आ रही है।'

इतना सुन धर्म बड़े अधीर हुए, पर होनहार को क्या करे। उन्होंने उस धैर्य शालिनी कन्या से हठ पूर्वक कहा कि—'हे सुभगे ! मैं तुम्हारे पिता से यह प्रार्थना नहीं कर सकता, हे सुन्दरी। तुम मेरे साथ 'गान्धर्व' विवाह कर लो और इस प्रकार मेरे मनोरथ को पूर्ण कर दो।' उनकी ऐसी हठ भरी बातें सुन उसने सोचा कि 'यदि मैं ऐसा करती हूँ तो फिर मेरे पिता को 'कन्यादान' का फल नहीं मिलेगा और इस प्रकार वे कन्यादान के फल से वंचित हो जायेंगे, अतः मैं ऐसा कदापि न करूँगी।' उसने उस हठी ब्राह्मण से कहा—'अरे

जड़मते ! अब फिर ऐसी बातें न करना यहाँ से तू चला जा' किन्तु उस कन्या के इतने कड़े वचन सुनकर भी कामातुर होने के कारण वह नहीं माने। फिर क्या था-- तपोबल से बलवती धूतपापा ने उसे यह

शाप दिया कि 'तुम बड़े भारी जड़ हो अतः जड़ों के आधार ! नद हो जाओ।'तब तो शापग्रस्त हो ब्राह्मण ने भी उसे शाप दिया कि 'रे दुर्मते ! कठोर हृदय वाली ! तू भी (चेतना रहित) पाषाण की शिला हो जा।'

धर्म व धूतपापा नद

स्कन्दजी ने अगस्त्य ऋषि से कहा कि—हे मुनिवर वह धर्म' शाप से 'धर्मनद' हो गया जो कि अविमुक्त महाक्षेत्र अर्थात् काशी में 'धर्मनद' नाम से प्रसिद्ध हुआ। धूतपापा ने भी डरते हुए अपने पिता के पास जाकर सारी बातें कह डाली। वेदशिरा मुनि ने ध्यान लगाकर सारी बातें समझ लीं और कहा कि अरे पुत्री ! तुम डरो मत। मैं तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण ही करूँगा। शाप तो व्यर्थ होगा नहीं, अतः तुम 'चन्द्रकान्त मणि' की शिला हो जाओ। हे साध्वी ! जब चन्द्रमा उदय होगा तब तुम्हारा शिलारूपी शरीर द्रवीभूत हो जायेगा,

हे बेटी ! तब तुम 'धूतपापा' नाम से नदी हो जाओगी । वह धर्मनद ही तुम्हारे अनुरूप भर्त्ता हैं, क्योंकि तुमने पति के लिए जिन-जिन गुणों की आकांक्षा की थी वे सभी गुणों से सम्पन्न थे । हे पुत्री मेरे तप के प्रभाव से तुम्हारा एक तो 'प्राकृत' और दूसरा 'द्रव' रूप होगा । स्कन्द जी ने कहा कि—हे अगस्त्य ! इस प्रकार वेदशिरा मुनि ने अपनी पुत्री को सन्तोष दिया । हे अगस्त्य ऋषि ! तभी से काशीपुरी में 'धर्मनद' नामक ह्रद प्रख्यात हुआ । महापाप का भी नाश करनेवाला वह द्रवरूपी 'नद' और सर्वतीर्थमयी शुभ की मूर्त्ति धूतपापा' नदी, तट पर के वृक्षों की तरह घोर पाप राशियों को सदा काटते रहते हैं ।

पूर्वकाल में जब गंगा जी नहीं थीं, तभी धूतपापा से मिले हुए धर्मनद तीर्थ पर भगवान् सूर्य ने तप किया था । वहाँ पर गभस्तिमाली गभस्तीश्वर के समीप ही में श्री मंगलागौरी की बड़ी आराधना उन्होंने की और घोर तपस्या की । उस तीर्थ में तप करने वाले 'मयूखादित्य' नामक सूर्य की किरणों से परिश्रम के कारण बड़ा स्वेद (पसीना) बहने लगा था । इसके बाद किरणों से निकलने वाले उस पसीने की धारा से 'किरणा' नामक एक पवित्र नदी वह चली ।

वह किरणा नदी के धूतपापा नदी में मिल जाने से उसके संगम में लोगों के स्नान करने मात्र से समस्त पाप रूपी अन्धकार का नाश हो जाता है । जो धूतपापा सर्वतीर्थमयी हो सब पापों को कँपा देती है, पहिले उसमें धर्मनद जा मिला फिर जिसका नाम लेते महामोह का जाल फट जाता है, वही भगवान् सूर्य की बनाई हुई 'किरणा' भी जा मिली । काशी के उस धर्मनद में 'पापहन्त्री' अर्थात् पाप को काटने वली 'किरणा' और 'धूतपापा' नदियाँ बहती रहती हैं ।

राजा दिलीप के पुत्र महाराज भगीरथ के साथ 'भागीरथी गंगा' भी वहाँ पर जा पहुँची और गंगा के साथ यमुना व सरस्वती भी आयीं । इस प्रकार यहाँ पर पवित्रजला १–किरणा, २–धूतपापा ३–गंगा, ४–यमुना और ५–सरस्वती नदियाँ आपस में मिलती हैं ।
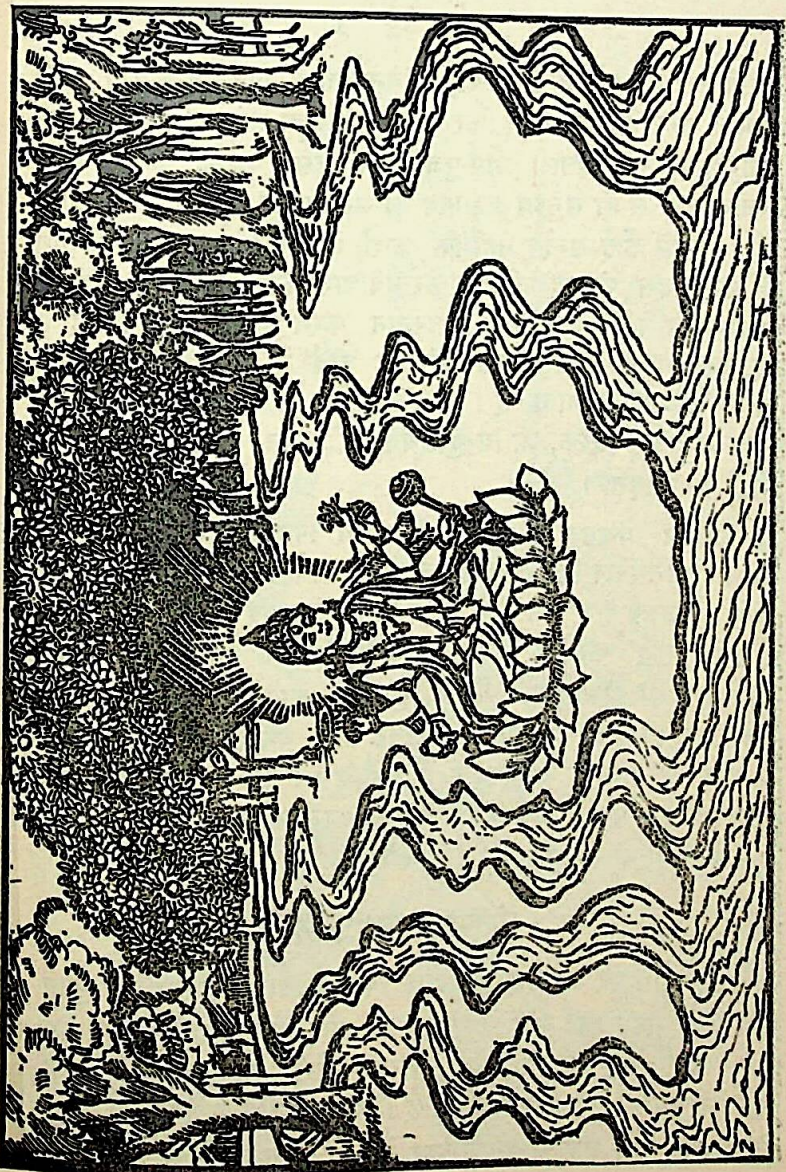
इसी कारण तीनों लोक में यह 'पंचनद तीर्थ' विख्यात है और इसमें स्नान करने से मनुष्य को फिर कभी पंचभूतों से बना हुआ देह नहीं धारण करना पड़ता। पाप-पुंज-भंजक इस पंचनद के संगम में स्नान मात्र से ही मनुष्य ब्रह्माण्ड का मण्डप भेद कर पार चला जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि काशी में पग-पग पर बड़े-बड़े तीर्थ हैं परन्तु इस 'पंचनद' तीर्थ के करोड़वें अंश के समान भी वे नहीं हैं। प्रयागराज में पूरे माघ मास भर स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, उतना फल काशी के इस 'पंचनद तीर्थ' में मात्र एक दिन स्नान करने से प्राप्त हो जाता है। 'पंचनद' तीथ में स्नान कर पितरों को जल से तर्पण करके, श्री बिन्दुमाधव का पूजन करने से फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

पवित्र 'पंचनद' में तर्पण के समय पितरों के निमित्त जल के साथ जितने तिल दिये जाते हैं, उतने ही वर्ष के लिए उन पितरों की तृप्ति हो जाती है। ऐसे शुभ को देनेवाले 'पंचनद' तीर्थ पर जो लोग प्रेम से 'श्राद्ध' करते हैं उनके पितर नाना प्रकार की योनियों में पड़े रहते हुए भी तत्काल सब-के-सब मुक्त हो जाते हैं। 'पंचनद' में हो रहे श्राद्ध की कृपा को देख कर पितर लोग यमलोक में सिहाते रहते हैं और यह कामना करते रहते हैं कि हमारे वंश में यदि कोई ऐसा होता जो इस पवित्र 'पचनद' में आकर श्राद्ध करता तो हम लोगों की इस यम-यातना से मुक्ति हो जाती।

पंचनद का फल

इस तीर्थ पर जो कुछ धन दान किया जाता है उससे प्राप्त पुण्य उस कल्प भर नाश नहीं होता। जो बाँझ स्त्री श्रद्धापूर्वक पूरे एक वर्ष तक 'पंचनद' में स्नान कर 'मंगला गौरी' की पूजा करती है तो उसे निश्चय ही पुत्र उत्पन्न होता है। पंचनद तीर्थ के जल को कपड़े से छानकर उस जल से अपने इष्ट देव को स्नान कराने से बड़ा भारी
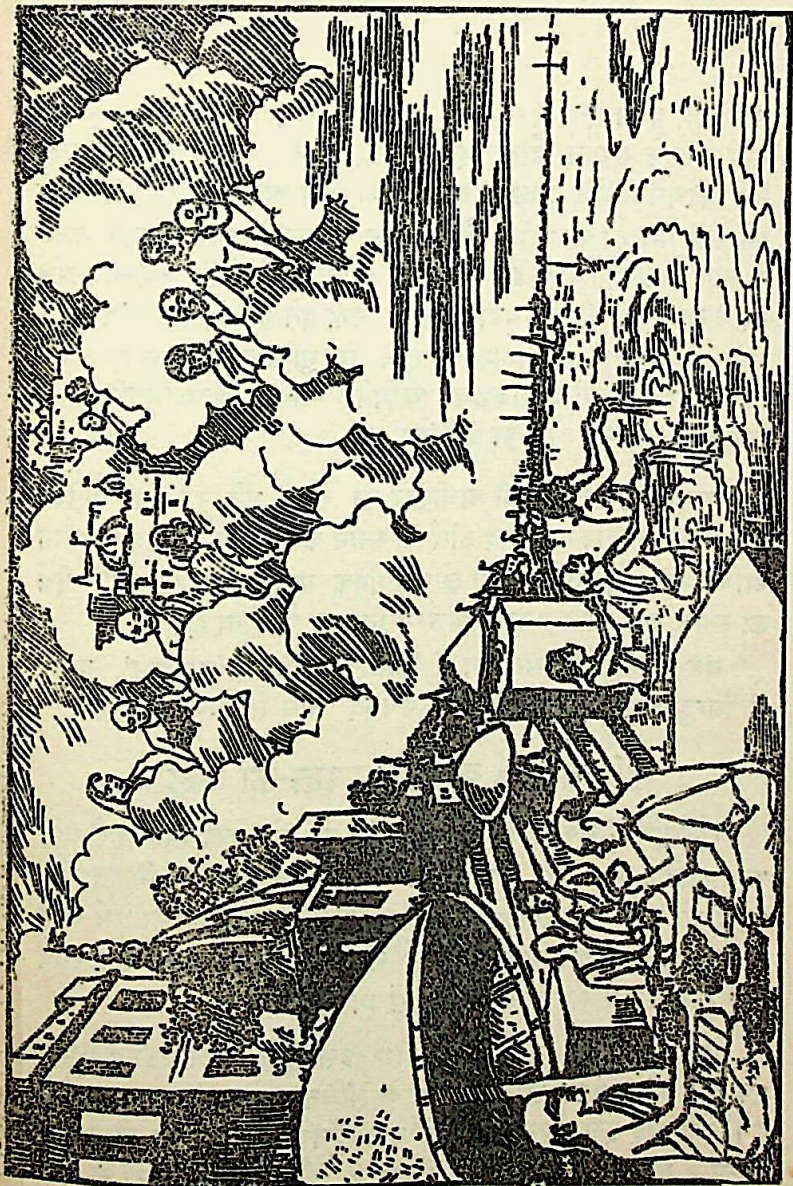
फल प्राप्त होता है। १०८ घड़ों में भरा पंचामृत, पंचनद तीर्थ के एक बूँद जल के समान होता है। स्कन्दजी ने अगस्त्य ऋषि से कहा कि 'अश्वमेध और राजसूय यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान करने से जो फल मिलता है, उससे सौगुना फल पंचनद के जल से स्नान करने से प्राप्त होता है। यह इस लिये कि राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ तो केवल ब्रह्मा की दो घड़ी तक ही फल देते हैं पर इस पंचनद के स्नान का फल तो कभी नाश न होने से मुक्ति का साधन हो जाता है। लोगों को स्वर्ग के राज्य का अभिषेक उतना अच्छा नहीं लगता जितना कि पंचनद तीर्थ का अभिषेक।

अन्य स्थान पर किसी अधीश्वर का सेवक बने रहने की अपेक्षा वाराणसी में जाकर पंचनद तीर्थ में स्नान करने वाले का सेवक बनना अधिक उत्तम होता है। जो लोग कार्तिक महीने भर 'पंचनद' तीर्थ का स्नान नहीं करते उनका पुनर्जन्म निश्चय ही होता है।

यह पंचनद तीर्थ सत्ययुग में 'धर्मनद', त्रेता में 'धूतपापा', द्वापर में 'बिन्दु तीर्थ' और कलियुग में 'पंचनद' नाम से जाना जाता है।

पंचनद में कार्तिक स्नान का फल

सत्ययुग में सैकड़ों वर्ष तपस्या करने पर जो फल मिलता है वही फल कार्तिक मास में 'पंचनद' तीर्थ में स्नान करने से मिलता है। अन्य जो फल यज्ञ करने, कूँआ और वावली खुदवाने जैसा धर्म कार्य जीवन भर करने पर प्राप्त होते हैं वही फल कार्त्तिकमास में पंचनद तीर्थ में एक वार स्नान मात्र करने से प्राप्त होता है।

धूतपापा के समान कोई भी तीर्थ इस पृथ्वी पर नहीं है। यहाँ एक वार स्नान करने से तीन जन्म के संचित पापों का नाश हो जाता है। जो कोई इस बिन्दुतीर्थ में एक घुँघची बरोबर भी स्वर्ण दान करता है वह न तो कभी दरिद्र होता है और न कभी स्वर्ण से हीन

ही होता है। इस तीर्थ में गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण; घोड़ा, कपड़ा, अन्न, माला, गहना इत्यादि जो कुछ भी दान दिया जाता है वह सब अक्षय होता है। इस पवित्र धर्मनद तीर्थ पर विधिपूर्वक प्रज्वलित अग्नि में एक आहुति दी जाय तो वह एक करोड़ होम करने के समान होती है। चारों वर्ग के लिए उत्तम स्थान, इस पंचनद तीर्थ की अपार महिमा का वर्णन भला कौन कर सकता है, इसकी महिमा जितनी लिखी जाय थोड़ी है। जो लोग इस 'पंचनद' तीर्थ की महिमा को श्रद्धापूर्वक पढ़ते हैं और सुनते हैं वे सब पापों से छूट कर मरणोपरान्त भगवान् विष्णु के लोक 'वैकुण्ठधाम' को प्राप्त होते हैं।

एक कवि ने कहा है --

दोहा

कहेऊ पंचनद तीर्थ जों, सो पंचगंगा घाट।
काशी में विख्यात है, सीढ़िन को बड़ ठाट॥
कातिक मास पुनीत में, रात याम अवशिष्ट।
नरनारी न्हावें वहाँ, मेला होत विशिष्ट॥

इस प्रकार यह स्कन्दपुराण के चतुर्थ खण्ड के उत्तरार्ध में पंचनद की उत्पत्ति नामक ५९ वें अध्याय की कथा का भाषा में वर्णन किया गया है।

श्री बिन्दुमाधव माहात्म्य

काशीखंड (अध्याय ६०)
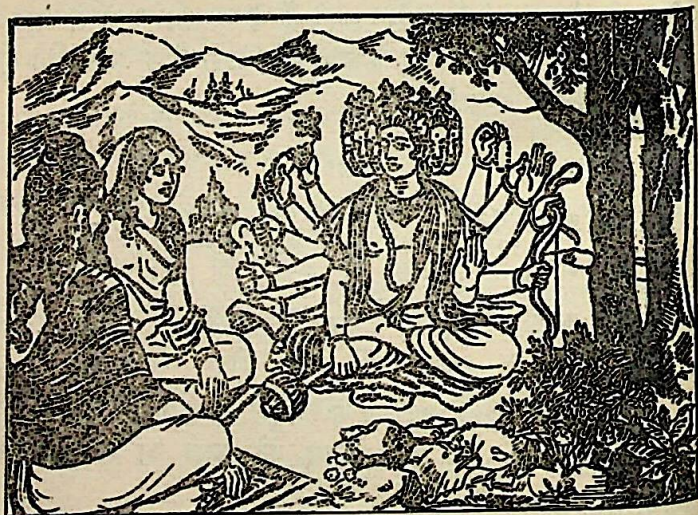
स्कन्दजी ने अगस्त्य ऋषि से कहा कि अभी तक तो मैं आपके समक्ष 'पंचनद' तीर्थ की कथा कह रहा था ; परन्तु अब 'बिन्दुमाधव' की पुण्य देने वाली उत्तम कथा कहता हूँ उसे ध्यान पूर्वक सुनिये। इस कथा को श्रद्धा से सुनने पर मनुष्य क्षण भर में पाप से मुक्त हो जाता है, लक्ष्मी से कभी हीन नहीं होता तथा धर्म से सदा परिपूर्ण रहता है। जब देवाधिदेव महादेवजी की आज्ञा पाकर विष्णुजी गरुड़ पर आरूढ़ होकर मन्दराचल से क्षण भर में 'वाराणसीपुरी' में आ पहुँचे, तब अपने माया जाल से वहाँ के राजा दिवोदास को उच्चाटन

कर पादोदक तीर्थ (आदिकेशव के पास) पर केशव रूप से टिक कर काशी की अपार महिमा का विचार करते-करते पंचनद तीर्थ को देख अत्यन्त प्रसन्न हो गये। प्रसन्नचित्त विष्णु भगवान् कहने लगे कि इस तीर्थ के आगे तो 'वैकुण्ठलोक' भी मुझे गुणहीन दिखाई देता है। क्षीर सागर में भला उतने गुण कहाँ हैं जितने कि इस 'पंचनद' तीर्थ में हैं।

भगवान् विष्णु ने कहा कि 'इतने गुण श्वेतद्वीप में नहीं हैं जितने कि इस धूतपापा में वर्त्तमान हैं। मुझे तो अपनी गदा को स्पर्श करने में उतना आनन्द नहीं मिलता, जितना कि इस धूतपापा के जल को स्पर्श करने से मिलता है। इस जल का स्पर्श करने से मुझे जो सुख का अनुभव हो रहा है वह क्षीरसागर की पुत्री लक्ष्मी के आलिंगन से भी नहीं होता।' गरुड़ को, महादेवजी को बुलाने के लिये भेजकर आनन्दवन, काशी, राजा दिवोदास तथा पंचनद तीर्थ के पवित्र गुणों का वर्णन करते-करते, भगवान् विष्णु (माधव) पंचनद तीर्थ में रहने लगे।

वहाँ उन्होंने अग्निविन्दु नाम के एक महर्षि को तपस्या में मग्न देखा। उस ऋषि ने अपने समक्ष भगवान् विष्णु को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो पृथ्वी पर माथा टेक दिया और माधव को प्रणाम किया। ऋषि ने विशाल शिलातल पर राजा बलि का विध्वंस करने वाले भगवान् अच्युत की हाथ जोड़ कर स्तुति करना प्रारम्भ किया—

अग्निबिन्दु द्वारा की गयी स्तुति

अग्निविन्दुरुवाच ॥

ॐ नमः पुण्डरीकाक्ष बाह्यान्तःशौचदायिने ।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
नमामि ते पदद्वंद्वं सर्वद्वंद्वनिवारकम् ।
निर्द्वन्द्वया धिया विष्णो जिष्णवादिसुरवंदित ॥

यं स्तोतुं नाधिगच्छन्ति वाचो वाचस्पतेरपि ।
तमीष्टे क इह स्तोतुं भक्तिरस्ति बलीयसी ॥
अपि यो भगवानीशो मनो वाचामगोचरः ।
स मादृशैरल्पधीभिः कथं स्तुत्यो वचःपरः ॥
यं वाचो न विशन्तीशं मनतीह मनो न यम् ।
मनोगिरामतीतं च कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥
यस्य निःश्वसितं वेदाः सषडंगपदक्रमाः ।
तस्य देवस्य महिमा महान् कैरवगम्यते ॥
अतंद्रितमनोबुद्धींद्रिया ये सनकादयः ।
ध्यायंतोपि हृदाकाशे न विंदंति यथार्थतः ॥
नारदाद्यैर्मुनिवरैराबालब्रह्मचारिभिः ।
गीयमानचरित्रोऽपि न सम्यग्योऽधिगम्यते ॥
तं सूक्ष्मरूपमजमव्ययमेकमाद्यं ब्रह्माद्यगोचरमजेयमनंतशक्तिम् ।
नित्यं निरामयममूर्तमचिंत्यमूर्तिं कस्त्वां चराचर चराचरविन्न वेत्ति ॥
एकैकमेव तव नाम हरेन्मुरारे जन्मार्जिताघमघिनां च महापदाद्यम् ।
दद्यात्फलं च महितं महतो मखस्य जप्तं मुकुन्द मधुसूदन माधवेति ॥
नारायणेति नरकार्णवतारणेति दामोदरेति मधुहेति चतुर्भुजेति ।
विश्वम्भरेति विरजेति जनार्दनेति क्वास्तीह जन्मजरतां क्व कृतां न भीतिः
ये त्वां त्रिविक्रम सदा हृदि शीलयंति कादम्बिनीरुचिररोचिषमंबुजाक्षम् ।
सौदामनीविलसितांशुकवीतमूर्तं तेऽपि स्पृशंति तव कांतिमचिंत्यरूपाम् ॥
श्रीवत्सलांछन हरेऽच्युत कैटभारे गोविंद तार्क्ष्यरथ केशव चक्रपाणे ।
लक्ष्मीपते दनुजसूदन शार्ङ्गपाणे त्वद्भक्तिभाजि न भयं क्वचिदस्ति पुंसि
यैरर्चितोसि भगवंस्तुलसीप्रसूनैर्दूरीकृतैणमदसौरभदिव्यगंधैः ।
तानर्चयंति दिवि देवगणाः समस्ता मंदारदामभिरलं विमलस्वभावान् ॥
यद्वाचि नाम तव कामदमब्जनेत्र यच्छ्रोत्रयोस्तवकथामधुराक्षराणि ।
यच्चित्तभित्तिलिखितं भवतोस्तिरूपं नीरूपभूपपदवी नहि तैर्दुरापा ॥
ये त्वां भजंति सततं भुवि शेषशायिंस्तांच्छ्रीपते पितृपतीन्द्रकुवेरमुख्याः ।
वृन्दारका दिवि सदैव सभाजयंति स्वर्गापवर्गसुखसंततिदानदक्ष ॥

ये त्वां स्तुवंति सततं दिवि तान्स्तुवंति सिद्धाप्सरोमरगणालसदब्जपाणे ।
विश्राणयत्यखिलसिद्धिद को विना त्वां निर्वाणचारुकमलां कमलायताक्ष ॥
त्वं हंसि पासि सृजसि क्षणतः स्वलीलालीलावपुर्धरविरंचिनतांघ्रियुग्म ।
विश्वं त्वमेव परविश्वपतिस्त्वमेव विश्वस्य बीजमसि तत्प्रणतोस्मि-नित्यम् ॥
स्तोता त्वमेव दनुजेंद्ररिपो स्तुतिस्त्वं स्तुत्यस्त्वमेव सकलं हि भवानिहैकः ।
त्वत्तो न किंचिदपि भिन्नमवैमि विष्णो तृष्णां सदा कुरुहि मे भवजां भिवारे ॥
इस प्रकार अग्निबिन्दु ऋषि ने भगवान् हृषीकेश की स्तुति की ।

भाषा:--अग्निबिन्दु ने कहा कि हे पुण्डरीकाक्ष आप भीतर और बाहर के शुद्धिदाता हैं, आप हजार मस्तक वाले, हजार नेत्र वाले और हजार चरण वाले पुरुष हैं, अतः आपको नमस्कार है। हे इन्द्रादि देवताओं द्वारा वन्दित विष्णु भगवान्, मैं एकाग्र बुद्धि से सर्वविध द्वन्द्व (अर्थात् धर्माधर्म, पापपुण्य, सुख दुःख इत्यादि) के निवारण करने वाले आपके दोनों चरणों को प्रणाम करता हूँ। वाचस्पति की वाणी भी जिसकी स्तुति नहीं कर सकती, भला उसकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है। फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति कर रहा हूँ उसमें मुझे अपनी भक्ति का ही भरोसा है। भला जो भगवान् प्राचीन महर्षियों के मनोगोचर नहीं हो सके, जो मेरी वाणी की शक्ति से परे हैं उनकी स्तुति मैं छोटी बुद्धिवाला होकर किस प्रकार कर सकता हूँ। जहाँ पर वाणी की कोई गति नहीं है और न मन ही जिसे मनन कर सकता है ऐसे मन व वचन से मैं ईश्वर की स्तुति कैसे कर सकता हूँ। छहों अंग पद, क्रम से चारों वेद जिसके श्वांस से अनायास ही उत्पन्न हुए हैं, भला उस भगवान् की अपार महिमा को कौन जान सकता है। सनकादिक ऋषिगण जिसका ध्यान अपने हृदय रूपी आकाश में किया करते हैं फिर भी वे आपको नहीं जान सके। आजन्म बाल ब्रह्मचारी श्री नारदजी भी आपकी सदा स्तुति करते रहने पर जब आपको भली प्रकार नहीं समझ सके। ब्रह्मादि देवताओं के भी अगोचर, अजेय, अनन्त शक्ति

से सम्पन्न, सूक्ष्मरूप, जन्म रहित, अव्यय, अद्वितीय, आद्य, नित्य निरामय, निराकार, अचिंत्यस्वरूप, चराचरमय और चराचर से भिन्न ऐसे आपको भला कौन जान सकता है। हे मुरारे, हे हरे! आपका एक-एक नाम ही पापियों के जन्मान्तर के संचित बड़ी-बड़ी विपत्तियों से पूर्ण पापों को दूर कर देता है, एवं मुकुन्द, मधुसूदन, माधव इत्यादि आपके पंजित नाम लेने मात्र से बड़े-बड़े यज्ञों का फल प्राप्त होता है। 'नारायण-नरकार्णवतारण, दामोदर, मधुसूदन चतुर्भुज, विश्वम्भर, विरज और जनार्दन इत्यादि आपके नामों को जपने वालों को इस संसार में भला फिर जन्म कहाँ लेना पड़ता है। ऐसे लोगों को यमराज का भय कहाँ लगता है? हे त्रिविक्रम जो लोग अपने हृदय में मेघ के समान सुन्दर शोभा को देने वाली श्याममूर्ति पर बिजली के समान चमकने वाले पीताम्बर ओढ़े हुए पुण्डरीकाक्ष आपका ध्यान करते हैं वे सब आपकी अचिन्त्य रूपा कान्तिको पाकर आपके ही समान हो जाते हैं। (जिसे आप अपना समझते हैं 'वही आपको जानता है और जानते-जानते आपके समान रूप में मिल जाता है') हे श्रीवत्सलांछन! हरे! अच्युत! कैटभारे! गोविन्द! गरुड़वाहन! चक्रपाणि! लक्ष्मीपति! दावसूदन! शार्ङ्गधर! आपके भक्तों को कहीं भी भय नहीं लगता। हे भगवन् कस्तूरी के सुगन्ध को जीतने-वाली उत्तम गंध से युक्त तुलसी की मंजरियों से जिसने आपकी पूजा की है, स्वर्ग में सभी देवता लोग मदार की माला से उन निर्मल स्वभाववालों की पूजा करते हैं। हे कमललोचन! जिनकी बोलचाल की भाषा में आपका नाम रहता है, जिनके कानों में आपके कथा के प्रिय अक्षर जा पड़ते हैं और जिनके चित्त पर आपकी मूर्ति चढ़ जाती है ऐसे लोगों के लिए निराकार ब्रह्मपद की प्राप्ति भी कुछ दुर्लभ नहीं है। हे स्वर्ग, अपवर्ग, सुख, संतति देने में दक्ष, शेष पर शयन करने वाले! श्रीपति! इस पृथ्वी पर जो सदा आपको भजते हैं, स्वर्ग में इन्द्र यम, कुबेर आदि देवगण सदा उनका सम्मान करते रहते हैं। हे कमलायतलोचन!

पद्मपाणे ! जो लोग सदैव आपका गान करते हैं। उनकी सिद्ध, अप्सरा, देवतागण भी स्वर्ग में प्रशंसा करते हैं। हे सिद्धियों के देनेवाले ! आपके सिवा मुक्ति-लक्ष्मी को कौन दे सकता है ? हे निजमायावशलीलारूपधारिन् अर्थात् अपनी मायावश लीला के अनुसार रूप धारण करने वाले ! विरंचि-नमस्कृत-चरणयुगल आपही क्षणमात्र में इस संसार को उत्पन्न करते हो, पालते हो और उसका नाश करने वाले हो। हे सर्वश्रेष्ठ ! आपही जगत, जगत के बीज और

जगत के नाथ हो अर्थात् आपही में संसार है, आप उसके स्वामी हैं और उसके बीज रूप हैं अतः मैं आपको हां सदा प्रणाम करता हूँ। हे दनुजेन्द्ररिपो ! आपही स्तुतिकर्त्ता, आपही स्तुति और स्तुति के पात्र हैं। तात्पर्य यह है कि आपही सब कुछ हैं। हे विष्णु मुझे तो आपसे भिन्न कुछ भी नहीं दिखाई देता। अस्तु, हे भवनाशक आप मेरी सांसारिक तृष्णा को शान्ति प्रदान करें।'

इस प्रकार से अग्निविन्दु, भगवान् की स्तुति कर चुपचाप खड़े

हो गये तब विष्णुजी ने कहा—'हे महातपोनिधे ! परमप्राज्ञ ! अग्नि-बिन्दु मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम जो कुछ माँगोगे मैं वह सब दूँगा। अतः तुम वर माँगो।' इस पर गद्गदवाणी में अग्निबिन्दु ऋषि ने कहा—'हे वैकुण्ठनाथ ! जगन्नायक ! भगवान् ! कमलाकांत यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जो मैं निवेदन कर रहा हूँ वही देने की कृपा करें।' भगवान् की स्वीकृति वाली मुद्रा देखकर अग्नि-बिन्दु ने प्रणाम कर भगवान् केशव से प्रार्थना की—'हे नाथ ! वैसे तो आप सर्वत्र व्याप्त है, सर्वव्यापी हैं, परन्तु हमारी प्रार्थना है कि आप मुमुक्षु लोगों के कल्याण के लिए इस पंचनद तीर्थ पर ही वास करें। हे माधव ! इसमें आपको विचार करने की आवश्यकता नहीं, अतः यह वर आप मुझे देवें। मैं आपके चरण कमल की भक्ति को छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहता।' इस प्रकार की ऋषि की प्रार्थना सुन भगवान् मधुसूदन ने परोपकार के लिए 'तथास्तु' कह दिया।

भगवान् विष्णु ने कहा कि— 'मुनियों में श्रेष्ठ ! हे अग्निबिन्दु ! मैं तुमसे काशी के भक्त लोगों के लिए मुक्ति के मार्ग का उपदेश करते हुए इस स्थान पर सदा बना रहूँगा। हे मुनि ! मैं तुमसे अधिक प्रसन्न हूँ क्योंकि तुम्हारी मेरे में दृढ़ निष्ठा और भक्ति है अतः तुम और भी जो माँगोगे मैं दूँगा। मैं तो पहले से ही विचार करता रहा कि मैं इसी स्थान पर रहूँ, परन्तु तुम्हारे कहने पर तो अवश्य यहीं पर स्थायी रूप से सदा निवास करूँगा। अमूल्य मणि के मिलने पर जिस प्रकार लोग शीशे को नहीं छूते, उसी प्रकार कौन मूर्ख होगा जो काशी में इस पंचनद तीर्थ को छोड़ अन्यत्र निवास करेगा। बिना अधिक परिश्रम किये यहाँ थोड़ा सा प्रयत्न करने पर ही इस नाशवान् शरीर के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और प्राणी को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। बुद्धिमान् लोग जानते हैं कि इस स्थान पर मुक्ति सुलभ है। अर्थात् उन्हें इस मिट्टी के जीर्ण-शीर्ण शरीर के बदले में अमृत-देह प्राप्त होता है। अन्य स्थान पर तपस्या, दान, यज्ञ आदि बड़े-बड़े कर्म

करने पर भी जो मोक्ष प्राप्त नहीं होता सो लाभ, इस काशी में शरीर त्याग करने मात्र से मिल जाता है। चित्त को एक स्थान पर लगाये रखने वाले योगी तथा ज्ञानी जन, योगाभ्यास करते रहने पर भी एक ही जन्म में वह मुक्ति नहीं पाते जो उन्हें काशी में शरीर त्यागने मात्र से मिल जाती है । काशी में मृत्यु होने पर महादान करने, बड़ी तपस्या करने और सर्वश्रेष्ठ व्रत करने का बोध होता है। वास्तव में संसार में उसी को पंडित मानना चाहिए जो एक बार 'काशी' के मिलने पर जीवन भर फिर कभी उसे न छोड़े।'

काशी का लय नहीं

विष्णु भगवान् ने आगे कहा— 'हे मुने सुनो—काशी, भगवान् महादेव के त्रिशूल पर बसी है अतः इसका प्रलयकाल में भी लय अर्थात् नाश नहीं होता और जब तक काशी रहेगी तब तक मैं इसी स्थान पर वास करूँगा।

इतनी वाणी सुनते ही अग्निबिन्दु के रोयें खड़े हो गये। वह बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने दूसरा वर भी इस प्रकार माँगा :—

'हे माधव ! इस शुभ एवं पवित्र स्थान 'पंचनद' तीर्थ पर आप मेरे नाम के साथ रहकर भक्त लोगों तथा अभक्तों को भी मुक्तिदान करते रहिये। हे माधव ! यदि कोई इस पंचनद तीर्थ में स्नान करके फिर कहीं दूसरे स्थान पर मरे तो उसे भी आप मुक्ति देवें। हे भगवान् ! जो लोग इस पंचनद में स्नान कर आपको सदा भजते रहें तो उनका सम्पत्तिरूप में चल लक्ष्मी और मोक्ष रूप में अचल लक्ष्मी कभी त्याग न करें।'

'बिन्दुमाधव'

श्री विष्णु भगवान् ने इतना सुनकर कहा कि 'हे मुने ! तुमने जो यह दूसरा वरदान माँगा है वैसा ही होगा। लक्ष्मी के सहित मेरे नाम के साथ तुम्हारा भी आधा नाम सदा जुड़ा रहेगा। काशी में मेरा

'विन्दुमाधव' नाम तीनों लोक में विख्यात होगा जो बड़े-बड़े पापों का नाश करनेवाला होगा। जो पुण्यात्मा लोग इस पंचनद तीर्थ पर मेरा पूजन करेंगे उन्हें फिर संसार का भय नहीं रहेगा। जो लोग इस तीर्थ पर अपने हृदय में मेरा ध्यान करेंगे उनसे धनरूपा और मोक्ष-रूपा दोनों लक्ष्मी कभी दूर नहीं रहेंगी, सदा उसके पास बनी रहेंगी। जो लोग इस तीर्थ पर आकर अपना धन ब्राह्मणों को दान नहीं करते और मर जाते हैं उनका वह धन सदा रोता रहेगा कि उसे, उसने किसी को दान नहीं दिया। जो लोग मेरे पास आकर द्रव्य दान करते हैं वे वास्तव में कृतार्थ हो जाते हैं।

बिन्दुतीर्थ और व्रत

श्री माधव ने आगे वरदान देते हुए कहा—'हे मुनियों में श्रेष्ठ अग्निबिन्दु! सब पापों का नाश करनेवाला यह तीर्थ भी तुम्हारे नाम से 'बिन्दुतीर्थ' कहा जायेगा। जो कोई ब्रह्मचर्य के साथ कार्त्तिक महीने में सूर्योदय से पहिले इस बिन्दुतीर्थ में स्नान करेगा उसे यमराज का भी डर नहीं रहेगा। मनुष्य मोह माया में पड़कर यदि बड़ा से बड़ा पाप कर डालता है और यदि वह इस पंचनद में एक बार भी स्नान कर लेता है तो वह क्षणभर में उससे मुक्त हो जाता है। भगवान् ने बताया कि जब तक मनुष्य का शरीर चले और उसकी सभी इन्द्रियाँ निष्काम न हो जायें तब तक वह व्रत करता रहे। क्योंकि देह का फल तो व्रत ही है। वह अपवित्रता का पात्र शरीर, एक भक्त, नक्त, अयाचितव्रत एवं उपवास करके ही शुद्ध किया जाता है। कृच्छ्रचान्द्रायण इत्यादि व्रत करने से यह अशुद्ध शरीर भी शुद्ध हो जाता है। व्रतों द्वारा शुद्ध किये हुए शरीर में ही धर्म वास करता है इस प्रकार धर्म के साथ अर्थ और काम भी रहते हैं। अस्तु चारों प्रकार के फल प्राप्त करने वालों को चाहिये कि वे धर्म की प्राप्ति के लिए जो व्रत आदि हैं उन्हें करें, तभी यह सब चारों पदार्थ उसे प्राप्त हो सकते हैं। वर्ष भर

यदि मनुष्य ऐसे व्रतों को न कर सके तो उसे चाहिए कि वह चातुर्मास (आषाढ़ शुक्ल एकादशी से चार महीने तक) का व्रत अवश्य करे।"

चातुर्मास व्रत

'भगवान् विष्णु ने चातुर्मास के सम्बन्ध में आगे बताया कि 'इस व्रत में लोगों को भूमि पर सोना चाहिये, ; ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए; २४ घंटे में एक वार भोजन करना तथा शक्ति अनुसार आचरण करना, अखण्ड दीपदान और अपने इष्ट देवता की महापूजा करनी चाहिये। बुद्धिमानों को चाहिये कि बहुत अंकुर निकले अथवा बीजों से भरे स्थान पर न जाँय। इस प्रकार जो लोग चातुर्मास व्रत करते हैं उन्हें चाण्डाल, म्लेच्छादि से बातचीत नहीं करनी चाहिये। उन्हें सदा मौन रहना चाहिये और बोले तो सत्य बोले। सूप से पछोरा अन्न, मसूर और कोदो आदि अन्न नहीं खाना चाहिये। तथा जो इस व्रत को न करता हो उसे छूना भी नहीं चाहिये। दाँत, केश और अपने वस्त्र आदि को नित्य धोना चाहिये तथा व्रत करने वाले को कभी कोई बुरी बात नहीं सोचनी चाहिये। बारहों महीना व्रत करने वाले को जितना फल मिलता है उतना ही फल चातुर्मास व्रत करने वाले को भी मिलता है। यदि चातुर्मास व्रत न किया जा सके तो ऐसे लोगों को चाहिये कि कार्तिक मास का शुद्ध हृदय से व्रत करें।

कार्तिक मास का व्रत

जो मूढ़ बुद्धि वाला मनुष्य कार्त्तिक मास में व्रत नहीं करता उसकी आत्मा शूकर की आत्मा के समान हो जाती है और इस प्रकार उसे कोई पुण्य नहीं मिलता। परन्तु जो पुण्यात्मा लोग हैं वे कार्त्तिक मास आने पर यथाशक्ति कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, प्राजापात्य (जो बन पड़े वही) व्रत अवश्य करें।

जो व्रती लोग होते हैं वे कार्तिक महीने में एकान्तरव्रत, त्रिरात्र-

व्रत, पंचरात्रव्रत, पक्षव्रत अथवा महीनेभर का व्रत करते हैं। अतः लोगों को बिना कोई व्रत किये कार्तिक मास को नहीं छोड़ना चाहिये।

कार्तिक मास में शाक, दूध, फलाहार या अन्न भी खाकर लोग अपना व्रत चला सकते हैं। कार्तिक मास के व्रत करनेवाले नित्य और नैमितिक (समय) से स्नान करें और जो लोग इस व्रत को करते हुए महाफल को प्राप्त करना चाहें तो उन्हें पूरे कार्तिक भर ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये कि कार्तिक में पूरे महीने ब्रह्मचर्य रहकर व्रत करने वाले को पूरे एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहने का फल अवश्य मिलता है। इसी प्रकार जिसने पूरा कार्त्तिक महीना उपवास करके बिताया हो उसे पूरे वर्ष उपवास करने का फल प्राप्त होता है। जो लोग पूरे कार्त्तिक भर दूध व शाक का सेवन करते हैं, उन्हें पूरे वर्ष शाक और दूध पर रहकर व्रत करने का फल मिलता है। कार्त्तिक भर पत्तल पर भोजन करना चाहिये। तथा काँसे के बर्त्तन का प्रयोग न करे। क्योंकि व्रती होकर भी जो लोग काँसे के पात्र में भोजन करते हैं उन्हें व्रत का फल नहीं मिलता। इस प्रकार कांस्यपात्र का प्रयोग न करनेवाला व्रती कांस्यपात्र को घी से भरकर दान करे। व्रती लोगों को चाहिये कि इस मास भर शहद (मधु) का भी सेवन न करें। क्योंकि कार्तिक मास में मधु खाने से नीचगति मिलती है। मधु छोड़ने पर घृत व शक्कर (चीनी) से बने खीर का दान करना चाहिये। शरीर में लगाने और भोजन में कार्त्तिक भर तेल का प्रयोग नहीं करना चाहिये।'

कार्त्तिकेयजी ने अगस्त्य ऋषि से कहा कि 'जो कोई कार्त्तिक मास में तेल लगाता है वह नरक को जाता है। महीनेभर तेल छोड़ने वाले को अन्त में तिल का दान करना और साथ में कुछ सुवर्ण भी देना चाहिये। जो कोई कार्त्तिक मास में मछली खाता है वह 'तिमि' नामक मछली की योनि में जाता है। (यह तिमि मछली चपटी लगभग

डेढ़ फीट की सफेद होती है और यह मुर्दा आदि को खाती है। इसे लोग खाना पसन्द नहीं करते, यह दवा आदि बनाने के काम में आती है) और इस कार्तिक मास में जो कोई माँस खाता है वह खून और पीप (पूय व शोणित) के बीच रहने वाला कीड़ा बनता है। जो लोग माँस आदि खाते हैं उन्हें भी चाहिये कि कार्तिक भर मांस का खाना छोड़ दें। इस प्रकार लोगों को मछली-मांस का त्याग कर कार्त्तिक के व्रत में लगना चाहिये। इनके सेवन से लोगों को बड़ा दोष होता है और ऐसे लोग सर्प योनि में जन्म लेते हैं। कार्त्तिक महीने में मछली, माँस छोड़ने वाले को उड़द व सुवर्ण दान करना चाहिये।

हे अगस्त्य जो कोई कार्त्तिक मास में मौन होकर भोजन करता है तो मानो वह अमृत ही भोजन कर रहा है। ऐसे मौनव्रती को तिल, सुवर्ण और घण्टा दान करना चाहिये। जो लोग महीने भर नमक नहीं खाते उन्हें अन्त में गऊदान करना चाहिये।

कार्त्तिक भर जो कोई भूमि पर शयन (सोता) करता है उसे फिर भूमि पर जन्म नहीं लेना पड़ता। ऐसे लोगों को तोषक तकिया के साथ पलंग दान करना चाहिये। जो कोई घृत से भरा अखण्ड दीप का दान महीने भर करता है उसे मोह अन्धकार में पड़ने पर भी कोई कष्ट या दुर्गति नहीं भोगनी पड़ती। कार्त्तिक में दीपदान करने वाले को क्रोधी यमराज का दर्शन नहीं करना पड़ता है।

कार्त्तिकेयजीने आगे कहा कि हे अगस्त्य ऋषि यह सत्य मानना कि जो प्राणी कार्त्तिक मास भर मेरे समक्ष सफेद बत्ती का दिया जलाएगा उसे तीनों लोक जगमगाता दिखाई देगा। जो कोई पंचामृत भरे घड़े से मुझे स्नान कराता है वह पुण्यसान क्षीरसागर (दूध के समुद्र जहाँ भगवान् श्री विष्णु शेषनाग की शैया पर शयन करते हैं) के तट पर वह पूरे कल्प भर निवास करता है। कार्त्तिक भर रात्रि में मेरे

आगे जो दिया जलाता है उसे फिर गर्भ का अन्धकार नहीं देखना पड़ता। जो कोई इस महीने भर मेरे आगे घी का दिया जलाता है उसे महामृत्यु का भी भय नहीं रह जाता। जो पूरे कार्त्तिक भर भक्ति के साथ इस 'बिन्दुतीर्थ' में स्नान करके मेरा दर्शन करेगा उससे भला मोक्ष भी कहीं जा सकता है अर्थात् उसे अवश्य मोक्ष मिलता है। व्रती मेरे समक्ष अर्घ्य देते समय कहे कि :--

व्रतिनः कार्त्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम।
दामोदर गृहाणार्घ्यं दनुजेन्द्रनिषूदन॥
नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्त्तिके पापशोषणे।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो भवान्॥

(दैत्येन्द्रविघातक ! दामोदर ! मैंने कार्त्तिक मास भर विधिपूर्वक इस बिन्दुतीर्थ में स्नान किया अतः मेरे अर्घ्य को स्वीकार करें।'

'हे कृष्ण ! नित्य या नैमित्तिक स्नान करने के पश्चात् मेरे अर्घ्य को राधा सहित आप स्वीकार करें।')

भगवान् माधव कहते हैं कि उक्त दोनों मन्त्रों को कह कर जो कोई व्रती सुवर्ण, रत्न, पुष्प और जल से पूर्ण शंख के द्वारा मुझे अर्घ्य देता है उसे उत्तम पर्व में सुपात्र ब्राह्मण (अच्छे ब्राह्मण को जो उसके योग्य हो) को किये गये सुवर्ण के साथ पृथ्वी दान करने का फल प्राप्त होता है।

'प्रबोधिनी' एकादशी

भगवान् विष्णु ने कहा कि 'हे ऋषि जो लोग प्रबोधिनी (डिठवन या देवोत्थान एकादशी जो कार्त्तिक शुक्ल ११ को पड़ती है) एकादशी को समाप्त होने तक मुझे उत्तम आभूषणों, पुष्प माला आदि पहना कर बहुत से दीप जलाकर उसके प्रकाश में मेरे समक्ष नाचते,

गाते और बजाते, पुराण आदि की कथा सुनते हैं तथा इस प्रकार महोत्सव करते हैं, मुझे संतुष्ट करने के लिये बहुत-सा अन्नदान करते हैं वे लोग बहुत बड़े पापी होने पर भी माँ के गर्भ में नहीं पड़ते अर्थात् उनका फिर जन्म नहीं होता ; बल्कि उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है।

मुझमें व विश्वनाथ में भेद नहीं

इस बिन्दु तीर्थ में स्नान कर जो कोई यहाँ पर बिन्दुमाधव नाम से पूजा करेगा उसी को निर्वाणगति मिलेगी। हे मुनि सत्ययुग में मैं १—'आदि माधव' के नाम से, २—त्रेता में सब सिद्धियों को देनेवाले 'अनन्त माधव' के नाम से, ३— द्वापर में परमा र्थ करने वाले, 'दामोदर' के नाम से, तथा कलियुग में कलि के पापों का नाश करने वाला, ४—'बिन्दुमाधव' के नाम से जाना जाऊँगा। मेरी माया से मोहित जो सदा भेदभाव से भरे रहकर कार्य करते हैं, मेरी और विश्वनाथ की भक्ति में अन्तर करते हैं वे भी कालभैरव की आज्ञा से पिशाच योनियों को भोगते हुए ३० हजार वर्ष तक दुःख के सागर में डूबते-उतराते हैं मुझमें तथा भगवान् विश्वनाथ में भेद न समझना चाहिये और जो विश्वनाथ की बुराई और मेरी बड़ाई करता है उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। जो अधम लोग मन में या खुलकर विश्वनाथ की निन्दा करते हैं वे मरने पर परलोक में भी अन्धतामिस्र नामक नरक में वास करते हैं। जो लोग शिव की तथा शिव के भक्तों की निन्दा करते हैं, उन्हें मेरा शत्रु ही समझो ऐसे लोग घोर नरक में पतित होकर वास करते हैं। जो भगवान् विश्वनाथ की निन्दा करते हैं वे सब २८ करोड़ नरकों में प्रत्येक नरक में एक-एक कल्प तक दुःख को भोगते हैं।

हे अग्निबिन्दु! मैं भी भगवान् विश्वनाथ की कृपा से मुक्ति देने में समर्थ हुआ हूँ। अतः मेरे भक्तों को चाहिये कि वे मेरी भक्ति के साथ-साथ विश्वनाथ की सेवा करें और उनकी भी भक्ति करते रहें।

महादेव की राजधानी

भगवान् विष्णु ने अग्निविन्दु ऋषि से कहा कि 'इस वाराणसी को भगवान् महादेव की राजधानी समझनी चाहिये। अतः मोक्ष की प्राप्ति चाहने वालों को इस काशी में रहकर सदा भगवान् विश्वेश्वर (महादेव) की सेवा करते रहना चाहिये। इस पंचनद तीर्थ में भगवान् विश्वनाथ स-परिवार स्कन्द तथा अपने अन्य गणों के साथ सदा कार्तिक माह में स्नान करते हैं। इतना ही नहीं स्वयं ब्रह्माजी ब्रह्माणी के साथ, समुद्रगण भी सभी नदियों के साथ पूरे कार्त्तिक महीने भर इस पवित्र 'धूतपापा' के तीर्थ में स्नान करते हैं। जो शरीरधारी कार्त्तिक मास में इस पंचनद तीर्थ में स्नान नहीं करते उनका मनुष्य जन्म पानी में उठने वाले बुलबुले के समान नष्ट ही समझना चाहिये।

हे मुनि सब स्थानों से पवित्र आनन्दवन है और उसमें भी पंचनद तीर्थ और भी पवित्र है; क्योंकि यहाँ पर मैं स्वयं निवास करता हूँ। यही कारण है कि इस पंचनद तीर्थ का माहात्म्य सब तीर्थों से सर्वोत्तम माना जाता है। इस माहात्म्य को सुनने से महामूर्ख भी पापों से छूट जाते हैं।'

इस प्रकार विष्णु भगवान् के मुख से पंचनद तीर्थ के माहात्म्य को सुन कर उन्हें प्रणाम करते हुए अग्निबिन्दु ऋषि ने पूछा कि 'हे भगवान्! बिन्दुमाधव! इस काशी में आपकी कैसी और कहाँ कौन-सी मूर्त्ति स्थापित है तथा भविष्य में अभी आप कौन-कौन रूप धारण करेंगे, जिन रूपों का पूजन कर आपके भक्त कृतार्थ होंगे, हे नाथ! कृपापूर्वक उस आनन्ददायक कथा को कहने की दया करें।

इस प्रकार यह स्कन्दपुराण के चतुर्थ खण्ड के उत्तरार्ध में 'विन्दुमाधव' माहात्म्य नाम के ६० वें अध्याय की कथा का भाषा में वर्णन किया गया।

—–o—–

यात्रा विवरण

शरद् ऋतु में—विष्णुकाञ्ची पुरी की यात्रा करनी चाहिए।

कार्त्तिक मास में—पंचगंगा तीर्थ तथा बिंदुमाधव की यात्रा व दर्शन, पूजा और स्नान करने का वहुत बड़ा माहात्म्य है।

रामजन्म—चैत्र सुदी ९ को रामघाट स्थित राममन्दिर में जाकर दर्शन करना चाहिए। (का० खं० अ० ८४ श्लोक ६९)

पंचमुद्रा देवी— पंचगंगा घाट पर। वैशाख शुक्ल ३ (अक्षय) को दर्शन व पूजा करनी चाहिये। (का० खं० अ० ७५, श्लोक ६७)

कृष्णजन्म—समस्त विष्णु काशी अर्थात् आदिकेशव से पंचगंगा घाट तक के सभी मन्दिरों की यात्रा करनी चाहिये भाद्र कृष्ण ८ को (का० खं० ६१)।

(कार्तिक शुक्ल ११ से १५ तक पंचगंगा घाट पर सभी मन्दिरों में शृङ्गार होता है। लोगों को विशेष रूप से इन दिनों मन्दिरों की शोभा तथा शृङ्गार का आनन्द लेना चाहिये)।

पञ्चक्रोशी-यात्रा–इस यात्रा के समय त्रिलोचन घाट पर आचमन करने के पश्चात् पञ्चगङ्गा घाट पर स्नान अथवा मार्जन करना चाहिए, तत्पश्चात् श्री बिन्दुमाधव का दर्शन करके तब आगे बढ़ना चाहिए। इन यात्रियों को चाहिए कि बिन्दुमाधव के दर्शन के वाद मंगलागौरी मन्दिर में स्थित 'गभस्तीश्वर' महादेव का दर्शन कर वहीं 'मंगलागौरी' का भी दर्शन करें।

(अन्तर्गृही की यात्रा में यह तीर्थ नहीं आते)

मंगलागौरी–प्रत्येक महीने के शुक्लपक्ष की तृतीया को नौ गौरी की यात्रा में बिन्दुतीर्थ (पञ्चगङ्गा घाट) स्थित मंगलागौरी (गभस्तीश्वर मन्दिर

में) का दर्शन करना चाहिये । चैत्र की नौरात्र में नौ गौरियों की ही यात्रा की जाती है । इनमें मंगलागौरी की यात्रा तीसरे दिन होती है । नौ गौरी यात्रा में यह देवी बड़ी समृद्धि देती है ।

प्रत्येक महीने की कृष्णपक्ष की चतुर्थी को ५६ विनायक (५६ गणेश) की यात्रा में इस क्षेत्र में पड़नेवाले पञ्चमावरण के विनायकों में कालविनायक (रामघाट के पास) तथा पष्ठावरण के विनायक 'स्थूलजंघ विनायक' जिन्हें 'मित्रविनायक' भी कहा जाता है (जो मंगलागौरी के पास हैं) का दर्शन करना चाहिए तथा इन दोनों स्थानों पर ब्राह्मणों को लड्डू देना चाहिए।

प्रत्येक शुक्ल और कृष्ण की ८ (अष्टमी) को भैरवी यात्रा, दुर्गा यात्रा, अष्टायतन यात्रा, त्रिलोचन यात्रा, स्वप्नेश्वरी यात्रा, मत्स्योदरी (मछोदरी) आदि की यात्रा करनी चाहिए । अष्टायतन महादेवों में से मंगलागौरी मन्दिर

स्थित गभस्तीश्वर का लोग दर्शन करते हैं तथा सुविधानुसार लोग भैरवी तथा दुर्गा यात्रा हर मंगलवार को करते हैं।

ब्रह्मचारिणी—नव दुर्गा अथवा नव चण्डी की यात्रा प्रत्येक नौमी को करने से (लिंग पुराण के अनुसार यह यात्रा होती है) बड़ा उत्तम फल प्राप्त होता है। यह यात्रा नौरात्र में वर्णित तिथियों के अनुसार निश्चित तिथि को विभिन्न देवियों के दर्शन करते हैं। इनमें से इस क्षेत्र में द्वितीया के दिन दुर्गाघाट स्थित 'ब्रह्मचारिणी' देवी का दर्शन लोग करते हैं। इसके अतिरिक्त इनका दर्शन नवरात्र की नवमी को भी किया जाता है। (ब्रह्मपुराण देवी कवच के अनुसार)।

प्रत्येक एकादशी को पंचनद स्थित विष्णुतीर्थ की यात्रा करनी चाहिए। कहा गया है कि—

सम्प्राप्य वासरम् विष्णोर्विष्णुतीर्थेषु सर्वतः।
यात्रा कार्या प्रयत्नेन, महाफलसमृद्धये॥
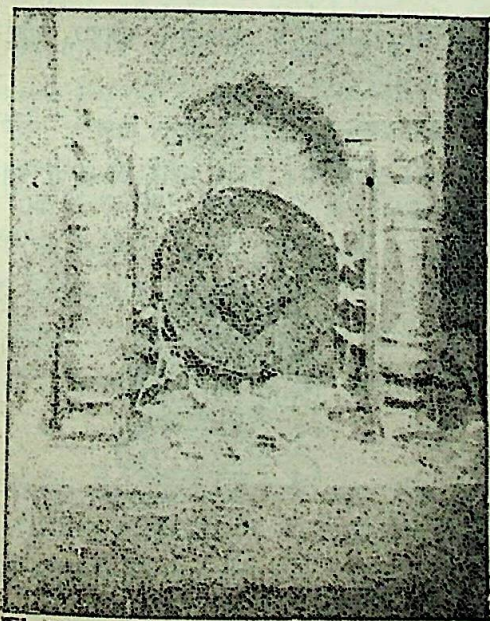
अर्थात् विष्णुवासर (एकादशी तिथि) को सभी विष्णु तीर्थों में यात्रा करने से अधिक उत्तम फल प्राप्त होते हैं। पञ्चगङ्गा घाट पर बिन्दुमाधवादिक विष्णु भगवान के स्थान, शिवलिंगों के समान काशी में अगणित हैं। चेष्टानुसार अपने-अपने क्षेत्र में उनकी यात्रा अवश्य करनी चाहिए।

मयूखादित्य—पञ्चगङ्गा के पास मंगलागौरी के मन्दिर में गभस्तीश्वर महादेव के उत्तर-पूर्व के पत्थर के खम्भे में भगवान् 'मयूखादित्य' विराज रहे हैं। (काशी खं० अ० ४६) इनका दर्शन प्रत्येक रविवार को करना चाहिए। यदि रविवार को षष्ठी तिथि हो तो उस दिन 'भानुषष्ठी तथा रविवार को सप्तमी तिथि पड़ने से उस दिन 'भानुसप्तमी' होती है इन दोनों दिन को 'पद्मक' योग लग जाता है। 'पद्मक' योग हजार सूर्यग्रहण के समान होता है। अतः उस दिन उस योग में दर्शन का विशेष महत्व माना जाता है।

आनन्द भैरव—रामघाट के पास में। रविवार और मंगलवार को इनका दर्शन करना चाहिए।

पञ्चामृत विनायक—दूधविनायक महाल में दुग्ध, दधि, शरकरा, मधु एवं घृतविनायकों की मूर्तियाँ हैं। प्रत्येक महीने की कृष्ण चतुर्थी को इनका दर्शन किया जाता है।
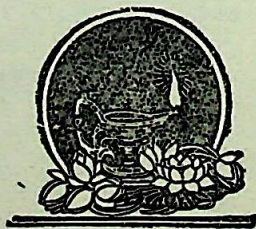
कार्तिक माहात्म्य

"एकादशी तथा 'कार्तिक मास' व्रत के सम्बन्ध में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है कि—"जो लोग 'तुला' के 'सूर्य' होने पर अर्थात् कार्त्तिक मास भर प्रातः काल (उजाला होने से पूर्व) स्नान करेंगे तो वे महापापी होने पर भी इसके फल से पवित्र हो जाएँगे। 'एकादशी' और 'कार्त्तिक मास' का व्रत सब लोगों को करना चाहिये। इस व्रत के करने से 'भोग', 'मुक्ति', 'पुत्र' और 'सम्पत्ति' की प्राप्ति होती है।"

भगवान् विष्णु का मन्दिर

कार्त्तिक मास भर भगवान् विष्णु के भवन अर्थात् मन्दिर को अच्छी प्रकार स्वच्छ करना चाहिए। उसे साथिया आदि बनाकर चित्रित करते हुए सजाये रखना चाहिये। उस मन्दिर में भगवान् विष्णु की बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ यथा सामर्थ्य सविधि पूजन करनी चाहिये। जो लोग कार्त्तिक मास भर ऐसा करते हैं उनको पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता।

वैकुण्ठलोक को

'कार्त्तिक मास' के व्रत करने वाले को भगवान् विष्णु के गण अन्त काल में ससम्मान 'विष्णु के विमान पर बैठा कर ले जाते हैं। इसी व्रत के करने से प्राणी साक्षात् 'विष्णु लोक' में जाकर भगवान् के चरणों में मस्तक टेकता है। साक्षात् भगवान् को अपने सम्मुख पाकर वह अपने को धन्य मानता है। कार्त्तिक मास का व्रती भगवान् को प्रिय होने से वैकुंठ लोक में ही रहता है।

तुलसी वृक्ष

जो व्रती भगवान् विष्णु के मन्दिर के द्वार पर तुलसी का वृक्ष लगाता है उसके घर में भगवान् के आशिर्वाद से मानो कल्पतरु वृक्ष लग जाता है। अर्थात् वह सर्व सम्पन्नता को प्राप्त होता है।

दीपदान करने वाले व्रती के गृह में भगवती लक्ष्मी सदा वास करती हैं। जो व्रती अपने जीवन भर 'कार्त्तिक' मास का व्रत करता है, उससे भगवान् का वियोग नहीं होता।

सत्यभामा-श्रीकृष्ण

एक बार श्री सत्यभामा जी ने अपने पतिदेव 'श्रीकृष्ण' से पूछा कि तिथियों में 'एकादशी' और मासों में 'कार्त्तिक' मास आप को क्यों प्रिय है ?"

भगवान् श्रीकृष्ण ने वेन के पुत्र तथा राजा पृथु के साथ हुई वार्ता का उल्लेख करते हुए कहा कि--'राजा पृथु ने नारद जी से कार्त्तिक मास की महिमा पूछी थी। इस पर नारद जी ने राजा को बताया कि--'शंखासुर ने भगवान् विष्णु को सोया हुआ समझकर 'सत्यलोक' अर्थात् 'ब्रह्मलोक' से 'वेद' को चुरा कर उसी समय उन्हें समुद्र में डाल दिया।

देवोत्त्थान एकादशी

सभी देवतागण ब्रह्मा जी के साथ विष्णु भगवान् के पास गये और प्रार्थना करने लगे, इनकी प्रार्थना से प्रभावित होकर भगवान् की निद्रा भंग हो गयी और वह जग पड़े। भगवान् की उस तिथि को जिस दिन वह जागे थे 'देवोत्थान एकादशी' (कार्त्तिक शुक्ल एकादशी) कहा जाता है।

नारद जी के अनुसार भगवान् ने कहा कि 'इस दिन प्रातः काल से एक प्रहर पूर्व अर्थात् तड़के उठकर जो लोग मेरी प्रार्थना करेंगे वे मेरे बड़े मित्र होंगे। भगवान् ने बताया कि आज ही से समस्त मन्त्र बीजरूप से जल में ही रहा करेंगे। इतना कह--मत्स्यावतार धारण कर सभी देवताओं को साथ ले शंखासुर का वध करने चल दिये।

शंखासुर का वध करने के पश्चात् भगवान् ने देवराज इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहा कि--'उन लोगों को आप सम्मान के साथ मेरे 'धाम' में पहुँचाया करें जो लोग कार्त्तिक मास का और कार्त्तिक शुक्ल पक्ष की 'एकादशी' का व्रत जीवन पर्यन्त करते रहे हों। यमराज जी से भगवान् ने

कहा कि 'आप ऐसे व्रती लोगों की समस्त बाधाओं से रक्षा करना। वरुण जी आप उन व्रत करने वालों को पुत्र, पौत्र आदि सन्तान देते रहोगे और कुबेर जी से कहा कि आप उनके धन और धान्य (अन्न) को बराबर बढ़ाते रहना। यह कार्य आप लोगों को इसलिये करना होगा क्योंकि इस कार्त्तिक मास की शुक्ल एकादशी को मुझे आप सबने उठाया है। देवोत्थान एकादशी को मेरे प्रिय होने का रहस्य यही है कि उस दिन देवताओंने मुझे जगाया है और मैंने देवताओं को उनके कर्त्तव्य समझाये हैं कि व्रती मानव की वह किस प्रकार रक्षा करेंगे। जो व्रती होगा उसकी रक्षा यह देवता गण स्वयं करते हैं। ऐसे व्रतियों का कोई कुछ नहीं कर सकता।

भगवान् शंखासुर का वध कर उस शंख को लेकर बदरिकाश्रम में गये। वहाँ सभी ऋषियों को बिखरे हुये वेदों को ढूढ़ने के लिए कहा और कहा कि इन्हें ढूँढ़ कर आप लोग प्रयागराज आइये हम वहीं चल रहे हैं।

भगवान की आज्ञा प्राप्त कर सभी ऋषियों ने विद्या रूपी 'सागर' में प्रवेश कर बीजों सहित 'वेदमन्त्रों' रूपी रत्नों को प्राप्त किया। जिसके पल्ले जो पड़ा वह उसी ऋषि का हो गया, और वह उसी की सम्पत्ति हो गयी। वे सभी ऋषि प्रयाग में जाकर ब्रह्मा को सभी वेद भगवान् के समक्ष दे दिये जिसे पाकर ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रसन्नता में उन्होंने वहीं अश्वमेध यज्ञ किया। देवताओं के यज्ञ के बाद प्रार्थना कर और भगवान् के आशीर्वाद से 'प्रयागतीर्थ' परम पवित्र होकर 'तीर्थराज' हो गया और तभी से वह 'ब्रह्मक्षेत्र' बन गया।

कार्त्तिक मास के धर्म, कर्म की महिमा का वर्णन जिस प्रकार श्रीनारद जी ने कहा है उसे इस प्रकार समझना चाहिये—

आश्विन मास की शुक्ल एकादशी से 'कार्त्तिक व्रत' को सावधानी से प्रारम्भ करना चाहिये। व्रती को रात्रि के चौथे प्रहर (पहर) में उठ कर पूर्व-उत्तर दिशा की ओर नित्य कर्म के लिये जाना चाहिये। पश्चात् मुख शुद्धि के लिये दाँतों को तथा मुँह को धोकर स्नान करे और तब भगवान् 'विष्णु' अथवा 'शिव'

के मन्दिर में जाकर पूजा, कीर्तन, भजन तथा प्रार्थना करे। जहाँ भक्त जन भगवान् का भजन-गान करते हैं भगवान् वहीं वास करते हैं और उन्हें सुलभ रहते हैं।

भगवान् विष्णु की पूजा में ये सब वर्जित है—सिरीष, धतूरा, गिरिबा, चमेली, सेमर, अकवन और कनईल के फूल तथा अक्षत से पूजा नहीं करनी चाहिये। इसी प्रकार हुरहुर, मौलसिरी, जूही, मालती, केवड़े के फूलों से 'भगवान शिव' की पूजा नहीं करनी चाहिये। लक्ष्मी की कामना करने वाले को तुलसी दल से 'श्री गणेश जी' की, दूर्वा (दूब) से 'श्री दुर्गाजी' की, पूजा विल्वपत्र से 'श्री सूर्य भगवान्' की पूजा नहीं करनी चाहिये।

भगवान् की पूजा करने के बाद इस श्लोक को पढ़ें—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥

(हे सुरेश्वर! हे देव! यह मन्त्र के बिना, क्रियाहीन तथा भक्तिहीन होकर मैंने आप की जो पूजा की है वह मेरी पूजा पूर्ण अर्थात् पूरी हो।

पश्चात् प्रदक्षिणा आदि करके अपने-अपने गृह-कार्य की ओर जाना चाहिये। इस प्रकार की विष्णु की पूजा करने वाले पाप रहित होकर अपने पूर्वजों के साथ विष्णुलोक में जाते हैं।

नारद जी ने राजा को बताया कि नहर से दस गुना नदी में और नदी से दस गुना 'संगम' में, संगम से दस गुना फल तीर्थ में स्नान करने से प्राप्त होता है। स्नान से पूर्व संकल्प करना चाहिये; स्नान के पश्चात् अर्घ्य देते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेष गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते॥

(कमलनाभ को नमस्कार है, जलशायी भगवान् को नमस्कार है, हे हृषीकेष! आप को नमस्कार है। मेरे अर्घ्य को स्वीकार करें।)

दूज, सप्तमी, नवमी, दशमी, त्रयोदशी को आमला और तिल के तेल लगाकर स्नान करना चाहिये। कार्त्तिक मास में पितृ तर्पण के समय जल, तिल से तर्पण करे। तर्पण के जल में जितने तिल होते हैं उतने ही वर्ष तक उसके पितर स्वर्ग में निवास करते हैं।

नारदजी ने आगे बताया कि हे राजा—पृथ्वी में अप्रकट रूप से 'ब्राह्मण' विष्णु भगवान् के समान होते हैं। अतः इनका अनादर और विरोध नहीं करना चाहिये। नारद जी ने भगवान् श्रीकृष्ण के वचन को पुनः कहते हुये कहा कि 'ब्राह्मणों के दाहिने चरण में तीर्थ, मुख में वेद और सब अंगों में देवता वास करते हैं। सो उनकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् की प्रिया तुलसी की भी पूजा और परिक्रमा करनी चाहिये।'

व्रत के नियम

'कार्त्तिक' का व्रत करने वाले को शहद, राई, कांजी, मांस और मादकीय पदार्थ का भोजन में सेवन नहीं करना चाहिये। पराया अन्न, दाल, तिल, तैल, बाजार का बना पकवान, दूषित अन्न, चूना, जमीरी नीबू, मसूर, तथा बासी अन्न नहीं खाना चाहिए। नरक चतुर्दशी के सिवाय अन्य किसी दिन तेल नहीं लगाना चाहिए।

गौ, बकरी तथा भैंस का ही दूध सेवन करना चाहिए अन्य का नहीं।

घीया (कद्दू), बैगन, कोहड़ा, कटेरी के फल, तरबूज और कैथ का भी सेवन नहीं करना चाहिए।

रजस्वला स्त्री, म्लेच्छ, पतित, ब्राह्मण द्रोही, और वेद मार्ग पर न चलने वालों से कार्त्तिक के व्रती को भाषण छोड़ देना चाहिए अर्थात् कार्त्तिक भर ऐसे लोगों से बात चीत नहीं करनी चाहिए।

पड़िवा को कोंहड़ा, दुइज को कटेहरी, तीज को तरुणी (तरोई), चौथ को मूली, पंचमी को श्रीफल, छठ को तरबूज, सप्तमी को आँवला, अष्टमी को नारियल, दशमी को कदुवा, एकादशी को परवल, द्वादशी को बैर, त्रयोदशी

को बैंगन (भण्टा), चतुर्दशी को हरफोर बड़ी और पूर्णिमा को शाका आदि शाकों को न ग्रहण करना चाहिए तथा सदा रविवार को आँवला का सेवन नहीं करना चाहिए। ये ही नियम माघ मास के व्रती को भी करने चाहिए।

पृथ्वी में भुक्ति और मुक्ति देने वाले सभी तीर्थ 'कार्त्तिक' व्रती के शरीर में वास करते हैं। जहाँ यह व्रती रहता है वहाँ भूत-प्रेत, ग्रह, पिशाच आदि नहीं रह पाते। ऐसे व्रती को किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं रहती।

व्रत का उद्यापन

कार्त्तिक मास के व्रती को चाहिए कि कार्त्तिक शुक्ल १४ (वैकुंठ चतुर्दशी) को व्रत की पूर्णता तथा भगवान् विष्णु को प्रसन्न बनाये रखने के निमित्त उद्यापन करे।

सर्व प्रथम 'तुलसी' के वृक्ष के चारों ओर द्वार बनावे और उसके ऊपर चारों ओर तोरण लगावे। चारों द्वारों के दिगपालों (मिट्टी के बने हुए) पुण्यशील, सुशील, जय और विजय की पृथक् पृथक् पूजा करे। तुलसी के जड़ के समीप चारो रंगों से सर्वतोभद्र बनावे और उसके ऊपर पंचरत्न और नारिकेल सहित कलश की स्थापना करे। उसी स्थान पर शंख, चक्र, गदा, पद्म और पीताम्बर धारी लक्ष्मी सहित विष्णु की पूजा करनी चाहिए। मंडप में इन्द्रादिक देवों की भी पूजा करे।

शुक्ल चतुर्दशी को उद्यापन पूजा इस लिए करनी चाहिए क्योंकि भगवान् विष्णु द्वादशी तिथि में जागे हैं, त्रयोदशी में देवताओं ने उनका दर्शन किया है तथा चतुर्दशी में स्वयं देवताओं ने भगवान् की पूजा की है। (द्वादश्यां प्रतिबुद्धोऽसौ त्रयोदश्यां युतः सुरैः। दृष्टोऽर्चितश्चतुर्दश्यां तस्मात्पूज्यस्तिथावही ॥ (कार्त्तिक माहात्म्य अ० ८ श्लोक ७, ८) अतः चतुर्दशी को शांत चित्त से पूजा करनी चाहिए।

गुरु की आज्ञानुसार विष्णु की स्वर्ण प्रतिमा की पूजा करे तथा शान्त चित्त से उपवास करे। भजन-कीर्तन कर रात्रि जागरण करे। पश्चात् पूर्णिमा के दिन प्रातः काल उठकर नित्य क्रिया करे। स्थिर चित्त से होम करे तथा

बाद में ब्राह्मणों को भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा देकर संतुष्ट करे। जो लोग 'वैकुंठ चतुर्दशी' को इस प्रकार व्रत-उद्यापन करते हैं वे लोग 'वैकुंठ धाम" को जाते हैं। जो लोग नारायण के आँगन में भजन गाते हैं वे लोग सब पापों से छूट जाते हैं। जागरण के समय जो नृत्य करते हैं, जो विष्णु चरित्र को कहते हैं, उन्हें विष्णु भगवान् सालोक्य मुक्ति देते हैं। जो मनुष्य बकवाद न कर मुख से वंशी बजाते हैं उनका पुण्य करोड़ों तीर्थों के समान हो जाता हैं। पूर्णिमा की रात्रि में ३० अथवा १ ब्राह्मण को भोजन करावे। इसी दिन भगवान् ने मत्स्य का रूप धारण किया था। इसलिए भी दान, होम, जप आदि का फल अक्षय होता है। 'अतो देव' ऋचा से तिल और खीर का होम करे तथा खीर का ही ब्राह्मणों को भोजन करावे। ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर उन्हें प्रसन्न करे तथा इसके बाद विष्णु के साथ अन्य देवताओं की व गौ की पूजाकर व्रत का उपदेश करने वाले ब्राह्मण को वस्त्र, आभूषण आदि देकर सत्कार करना चाहिए। उनसे प्रार्थना करते समय कहना चाहिए कि आप सबके आशीर्वाद से भगवान् विष्णु मेरे पर सदा प्रसन्न रहें और इस व्रत के प्रताप से सात जन्मों के पाप नष्ट हो जायें। मेरी सन्तान चिरंजीवी, कुशल एवं प्रसन्न रहें और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण एवं सफल हों। मृत्यु होने पर मुझे वैकुंठ धाम प्राप्त हो। इस प्रकार ब्राह्मणों का आदर करे तथा पूजा की समस्त सामग्री को गौ के साथ ब्राह्मण (गुरू) को दे देवे।

इतना करने के बाद इष्ट-मित्र एवं बन्धु बान्धवों के साथ स्वयं भोजन करे।

जो मनुष्य इस प्रकार विधि पूर्वक कार्त्तिक का व्रत तथा उद्यापन करता है वह पापों से मुक्त होकर सब कामनाओं के साथ विष्णु भगवान् के धाम को जाता है। वही मनुष्य धन्य माना जाता है जो ऐसा करता है। जो फल सब तीर्थों के दर्शन व स्नान से, सर्व दान से, सर्व व्रत करने से प्राप्त होता है उसका करोड़ गुना फल कार्त्तिक मास के विधान करने से होता है।

कार्त्तिक मास के व्रती के भय से उसके देह स्थित पाप काँपते रहते हैं। वे डर के मारे इधर-उधर स्थान ढूंढ़ते फिरते हैं।

तुलसी

महाराजा पृथु ने देवर्षि नारद जी से पूछा कि भगवान् कृपा पूर्वक तुलसी की महिमा का भी यदि वर्णन करने का कष्ट करें तो आप की बड़ी अनुकम्पा होगी और 'तुलसी' भगवान् को क्यों प्यारी है यह भी बताने की कृपा करें। इस पर नारद जी ने जलन्धर राक्षस की गंगासागर में उत्पत्ति, विष्णु से युद्ध, विष्णु का जलंधर के यहाँ रहना, महादेव व जलंधर का घोर युद्ध इसी बीच विष्णु और वृन्दा (जलंधर की पत्नी) के धोखे में होने वाले प्रेम, वृन्दा का जलकर भस्म होना तथा वृन्दा के वियोग में विष्णु का उसके चिता की राख को लगाये वहीं वास करना, देवताओं द्वारा पार्वती (गौरी) लक्ष्मी, सरस्वती की प्रार्थना तथा उनके द्वारा दिये गये बीजों को इस चिता के स्थान पर बोने की सारी कथा कह सुनाई।

नारद जी ने बताया कि उनके तीनों बीजों से आँवला (धात्री), मालती और तुलसी ये तीन वनस्पति उत्पन्न हुई। सरस्वती के दिये हुए बीज से रजोगुणी 'धात्री' (आँवला), लक्ष्मी के बीज से सत्वगुण वाली 'मालती' और गौरी के बीज से तमोगुणी 'तुलसी' का प्रादुर्भाव हुआ। पश्चात् भगवान् धात्री और तुलसी के साथ वैकुंठ धाम को चले गये। अतः वैकुण्ठ चतुर्दशी के दिन तुलसी के मूल में विष्णु की पूजा करनी चाहिए।

तुलसी की महिमा का वर्णन करते हुये नारद जी बताते हैं कि जिस घर में तुलसी का वन होता है वह घर तीर्थ रूप होता है। ऐसे घर में यमराज के दूत नहीं जा पाते। जो लोग तुलसी का वृक्ष लगाते हैं वे यमराज के दर्शन नहीं करते। नमर्दा का दर्शन, गंगा का स्नान, और तुलसी के वन का संसर्ग अर्थात् तुलसी के वन में निवास करना एक समान माना जाता है। तुलसी का पौधा लगाने से, उसे सींचने से, उसका दर्शन करने से तथा स्पर्श करने से कायिक, वाचिक, मानसिक सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

जो लोग तुलसी की मंजरियों को विष्णु और शिव पर चढ़ाते हैं उन्हें

फिर आवागमन के चक्कर से मुक्ति मिल जाती है अर्थात् उन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

तुलसी के दल में 'पुष्कर' आदि तीर्थ, 'गङ्गा' आदि नदियाँ, विष्णु आदि देवता वास करते हैं। तुलसी के जड़ की मृत्तिका (मिट्टी) को मरने वाले के शरीर में लगा देने से उसे यमराज देखते ही नहीं उनका तथा उनके दूतों का उसे स्पर्श करना तो दूर रहा। तुलसी की लकड़ी को घिसकर उसका चन्दन जो लोग लगाते हैं, उनके शरीर के पाप नष्ट हो जाते हैं। तुलसी वन की छाया में पितरों के निमित्त किया गया श्राद्ध अक्षय होता है।

आँवला की महिमा

आँवले के वृक्ष की छाया में बैठकर श्राद्ध करने से नरक में पड़े पितर भी तृप्त होते हैं। जो मस्तक, हाथ, मुँह और देह में आँवला के फलों को लगाते हैं या उसे धारण करते हैं वे विष्णु के समान होते हैं। आँवलों का फल, तुलसी और द्वारिका की मिट्टी जिनके शरीर पर नित्य रहती है उनकी मुक्ति हुई ही समझना चाहिये।

आँवला और तुलसी दलों को जल में मिलाकर स्नान करने से गङ्गा जल से स्नान करने के समान फल होता है। आँवला के पत्तों और फलों को विष्णु भगवान् को चढ़ाने से उन्हें स्वर्ण, रत्न आदि चढ़ाने के समान माना जाता है।

कार्त्तिक मास में तुला के सूर्य होने पर सभी तीर्थ, मुनि, देवता और सब यज्ञ आँवले के वृक्ष में वास करते हैं। अतः आँवले के वृक्ष के नीचे कार्त्तिक मास में बैठकर जो मनुष्य भोजन करते हैं वह पूरे वर्ष भर अन्न के संसर्ग से उत्पन्न होने वाले सभी व्याधियों से मुक्त रहते हैं। आँवले के वृक्ष की जड़ में कार्त्तिक मास में जो मनुष्य विष्णु भगवान् की पूजा करता है वह मानों विष्णु के सभी क्षेत्रों के पूजन का फल प्राप्त कर लेता है।

इस कार्त्तिक मास के व्रत को करने वालों में एक धर्मदत्त नामक ब्राह्मण थे उन्होंने शाप युक्त एक कलहा का उद्धार उस पर तुलसी युक्त जल छिड़क कर

किया था। वह कलहा धर्मदत्त द्वारा बताये कार्त्तिक व्रत, दीपदान आदि को कर प्रेत, पिशाच आदि योनि से मुक्त हो गयी।

विष्णु को प्रसन्न करने के लिये विष्णुदास नामक ब्राह्मण ने कार्त्तिक का व्रत तुलसी के वन की रक्षा और एकादशी को द्वादशाक्षर मन्त्र का जप कर भगवान् विष्णु का साक्षात् दर्शन किया था।

जय–विजय

जय और विजय आपस के शाप से ग्राह (मगर) गज (हाथी) योनि को प्राप्त हुये थे। इस योनि में रहकर दोनों भगवान् विष्णु की अर्चना और ध्यान करते रहे। कार्त्तिक की पूर्णिमा के दिन गज स्नान करने को गया। वहाँ ग्राह ने उसे पकड़ लिया फिर क्या था भगवान् को आकर उन दोनों का सुदर्शन चक्र से उद्धार करना पड़ा। अतः कार्त्तिक की पूर्णिमा को जय और विजय का उद्धार भगवान् ने किया।

तुला के सूर्य होने पर अर्थात् कार्तिक मास में प्रातः काल स्नान करना, एकादशी का व्रत करना और तुलसी के वन की रक्षा करना मनुष्यों के लिये बड़ा फलदायक है। ऐसे लोगों की विष्णु भगवान् प्रसन्न हो स्वयं उनकी रक्षा करते हैं।

वनस्पतियों में तुलसी, मासों में कार्त्तिक, तिथियों में कार्त्तिक शुक्ल एकादशी, क्षेत्रों में द्वारिका, विष्णु को अधिक प्यारी है। कार्त्तिक मास के स्नान से पतिद्रोहादिक (पति से द्रोह अर्थात् झगड़ा करने से जो पाप होता है) पाप नष्ट हो जाते हैं।

सत्ययुग आदि में देश, ग्राम, कुलों सबको पाप भोगना पड़ता था परन्तु कलियुग में पाप करने वाले को ही पाप का भोग भोगना पड़ता है।

कार्त्तिक मास की पूर्णिमा को भगवान् महादेव को प्रसन्न करने के लिये सायंकाल दीपोत्सव करना चाहिये। भगवान् महादेव ने त्रिपुरासुर के तीनों पुरों का दाह इसी कार्त्तिक की पूर्णिमा को किया था। अतः लोगों को

दीपोत्सव कर त्रिपुरारि का विजय पर्व मानना चाहिये। कार्त्तिक व्रत करने वालों के पापों को भगवान् विष्णु अपने तेज से भस्म कर देते हैं।

कार्त्तिक व्रत करने वालों का साथ करने वाले धनेश्वर का मृत्यु के समय व्रतियों द्वारा उसपर तुलसी जल छिड़कने से वह पाप-मुक्त हो गया और यमराज के दूतों ने उन्हें नरक का अवलोकन कराकर बताया कि आप कार्त्तिक व्रतियों का साथ करने और तुलसी जल के स्पर्श के कारण इन सब नरकों के भोग से मुक्त हो गये।

कार्त्तिक मास के व्रत में प्रातः काल स्नान, तुलसी की सेवा, उद्यापन और दीपदान करना चाहिये। इन पाँचों कर्मों को जो व्रती करता है वह भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त करता है। अतः भोग की इच्छा और मोक्ष की इच्छा वाले को कार्त्तिक का व्रत करना चाहिये।

आपत्तिकाल में

आपत्ति में या विपत्ति में पड़ने पर किसी देवालय, तुलसी अथवा पीपल के वृक्ष के नीचे कार्त्तिक मास में पूर्णिमा को जागरण करने से उसे कार्त्तिक व्रत का फल प्राप्त होता है, जल न मिलने से विष्णु के नाम उच्चारण से ही मार्जन करना चाहिये। यदि उद्यापन की विधि सम्पन्न न कर सके तो व्रती को चाहिए कि उस दिन केवल ब्राह्मणों को भोजन करा देने से ही उसे उद्यापन करने का फल प्राप्त हो जाता है। क्योंकि अप्रकट रूप वाले विष्णु के प्रकट रूप ब्राह्मण ही हैं। इनकी प्रसन्नता में विष्णु की प्रसन्नता माननी चाहिये। यदि कोई मनुष्य स्वयं दीपदान न कर सके तो दूसरे द्वारा जलाये गये दीप की वायु से रक्षा कर उसे जलाये रखे तो उसे दीपदान का फल प्राप्त होता है। तुलसी के न मिलने पर वैष्णवों की पूजा करने से समान फल मिलता है। यदि ये वैष्णव जन न मिलें तो बड़, पीपल, गौ और ब्राह्मण में से किसी की पूजा करने से वही फल प्राप्त होता है। पीपल के वृक्ष साक्षात् विष्णु के समान, वट का वृक्ष शिव के समान और पलास का वृक्ष को ब्रह्मा समान समझना चाहिये।

'पंचनद तीर्थ' (पंचगंगा घाट) पर

महापुरुषों की वासभूमि—

स्वामी रामानन्दजी

स्वामी रामानन्दजी का काशी में निवास-स्थान इसी पञ्चगङ्गा घाट पर रहा है।

रसिक सम्प्रदाय में गुरु परम्परा, तिलक का महत्त्व एवं रसिक 'रामभक्ति' की मूल परम्पराएँ, 'श्री' तथा 'ब्रह्म' सम्प्रदाय में 'रामभक्ति' की परम्पराओं के 'बीज' स्वामी रामानन्दजी के पूर्वाचार्य लोग थे। भारत में इनकी कुल २७ गद्दियाँ हैं। सबसे अधिक गद्दियाँ अयोध्या में है।

स्वामी रामानुजाचार्य की तेरहवीं पीढ़ी में श्री राघवानन्दजी थे। यह महात्मा दक्षिण से काशी आकर यहीं पञ्चगङ्गा घाट पर आश्रम बनाकर रहने लगे। इस स्थान को 'गोपी गोविन्द तीर्थ' भी कहते हैं। इसी स्थान से महात्मा राघवानन्दजी ने उत्तर-भारत में 'राम' मन्त्र का प्रचार किया।

महात्मा राघवानन्दजी ने काशी में इसी स्थान पर प्रयाग निवासी शांकरमतानुयायी, कान्यकुब्ज ब्राह्मण 'रामदत्त' अथवा 'रामभारती' नामक व्यक्ति को दीक्षा दी। यही महापुरुष आगे चलकर 'रामानन्द' के नाम से विख्यात हुए।

'श्री सम्प्रदाय' तथा 'रामोपासना' के इतिहास में स्वामी रामानन्दजी युगप्रवर्त्तक आचार्य हुए। इसे इन्होंने एक संगठित एवं स्वतन्त्र सम्प्रदाय का रूप दिया।

स्वामी रामानन्दजी से पूर्व 'श्री सम्प्रदाय' में 'राम' की प्रतिष्ठा थी परन्तु उसमें प्रधानता 'श्री लक्ष्मीनारायण' की थी। स्वामी राघवानन्दजी की पूर्ण छाप स्वामी रामानन्दजी पर पड़ी थी।

श्रीमद्वल्लभाचार्य 'श्रीमहाप्रभूजी'
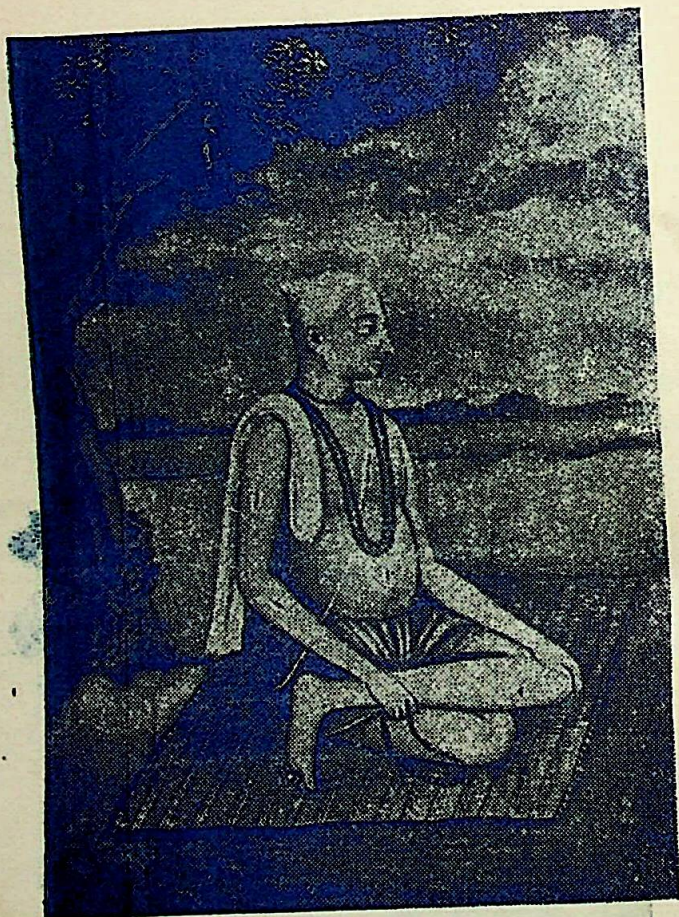
श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी

'पञ्चनद' क्षेत्र के विद्वान् पं० शतानन्दजी के यहाँ आपने वर्षों तक विद्याध्ययन किया है।
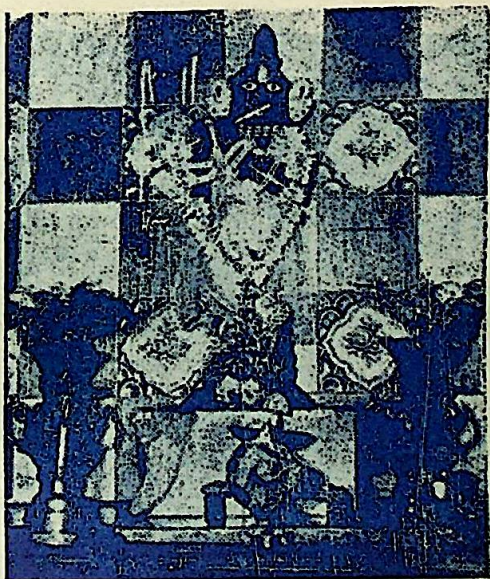
सन्त 'एकनाथजी' द्वारा स्थापित श्रीकृष्ण की मूर्ति
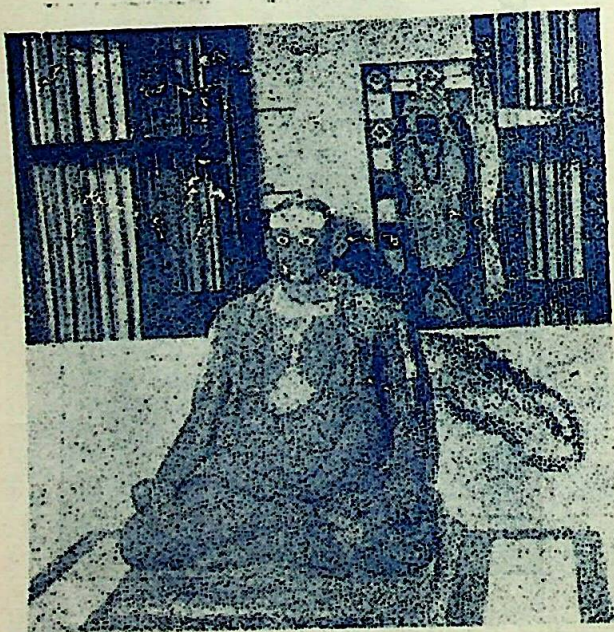
बाबा तैलङ्ग स्वामी की मूर्ति

पीछे आपकी इष्टदेवी 'श्रीमङ्गलाकालीजी'

स्वामी रामानन्दजी ने रामावत सम्प्रदाय का संगठन किया। इन्होंने 'रामतारक' या षडक्षर मन्त्र को दीक्षा के लिए बीज मन्त्र माना है। बाह्य सदाचार की अपेक्षा साधना में आन्तरिक भाव की शुद्धता पर आपने बल दिया। स्वामीजी ने 'रामोपासना' को युगधर्म के अनुरूप बनाया। इनके अनुयायी वैरागी कहलाये। इनके कारण यवनों द्वारा नष्ट किये जाने वाले तीर्थों की रक्षा हुई।

स्वामी रामानन्दजी की कृपा से 'तारक मन्त्र' के द्वारा बलात् मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को शुद्धकर पुनः उन्हें 'हिन्दू' बनाया जाने लगा। इस प्रकार स्वामीजी ने धर्म व देश की अमूल्य सेवा की है।

आप संत कबीरदासजी के गुरू थे। अतः कबीर पंथियों में इनका बड़ा सम्मान है।

स्वामी रामानन्दजी समन्वयवादी विचारधारा के थे। उपासना की सगुण और निर्गुण दोनों पद्धतियों को इनसे बल मिला। इनके १२ शिष्यों में दोनों प्रणालियों के प्रचारकों में श्री अनन्तानन्द (सगुण) और कबीर (निर्गुण) धारा के थे।

इसी रामनाम की परम्परा में सन्त तुलसीदासजी भी आये। वे अनन्तानन्द जी के प्रशिष्य और नरहरिदास अथवा नरहर्यानन्द के शिष्य थे। 'रामानन्द' जी की सगुण भावमय कृतियों की भाषा में 'प्रयाग' और 'काशी' की बोलियों की अधिकता है। परन्तु निर्गुण भावापन्न कृतियों में राजस्थानी व 'सधुक्कड़ी' भाषा का पुट है।

ऐसा कहा जाता है कि पञ्चगङ्गा घाट पर स्वामी रामानन्दजी के पास कबीरदासजी शिष्य बनने आये थे परन्तु रामानन्दजी ने उन्हें मुसलमान होने के कारण शिष्य नहीं बनाया। फलतः एक रात्रि में कबीरदासजी रामानन्दजी की कुटिया के बाहर सीढ़ी पर इस प्रकार लेट गये कि उनके ऊपर स्वामीजी का चरण पड़े। जब स्वामीजी प्रातः ३ बजे के बाद गंगा स्नान को निकले तो उनका खड़ाऊँ वाला पग कबीरदासजी पर पड़ा। वह अपने आश्रम से खड़ाऊँ पहने निकले थे इस पर कहा जाता है कि स्वामीजी को बड़ा पश्चाताप

हुआ उन्होंने कबीर को उठा लिया और बैठाकर कहा कि—'बच्चा राम-राम कहो तुम्हारा कल्याण होगा।' बस क्या था दूसरे दिन से कबीर साहब 'रामानन्दी' तिलक लगा घूमने लगे। अन्य साधुओं ने जब यह दृश्य देखा तो उनसे पूछा कि तुम्हें किसने शिष्य बनाया है तो कबीरदास ने बताया कि स्वामी रामानन्द (पञ्चगङ्गा घाट वाले) का मैं शिष्य हूँ। लोगों ने स्वामीजी से पूछा तो उन्होंने शिष्य बनाना अस्वीकार कर दिया। इस पर अन्य महात्मा एक दिन कबीर साहब को अपने साथ स्वामीजी के पास सामना कराने को लाये और देखा कि स्वामीजी समाधि लगाये बैठे थे। अतः वहाँ सब शान्त हो बैठ गये। इसी बीच कबीर ने भी समाधि लगाई थोड़ी देर में कबीर बोले कि 'डोरा तोड़ दीजिये और गले में पहना दीजिये' यह बात अन्य महात्माओं को जो वहाँ बैठे थे समझ में नहीं आई। जब स्वामीजी समाधि से अलग हुए तो उन्होंने पूछा कि 'डोरा तोड़ दीजिये...' किसने कहा था? इस पर कबीरदासजी ने कहा कि 'गुरूजी मैंने कहा था'। तब स्वामी रामानन्दजी ने उनसे कहा कि मैंने तुम्हें कब दीक्षा दी थी। कबीर ने उत्तर में कहा कि 'आपने चरणप्रहार कर मुझे उस रात्रि में 'राम-राम' कहने को कहा था। इस पर स्वामीजी को तब बोध हुआ कि उस रात्रि में यही कबीर था।

लोगों का कहना है कि इस पर स्वामी रामानन्दजी ने कहा कि 'महात्मागण यह कबीर वास्तव में बहुत पहुँचे हैं। मैं अभी मानसिक पूजा में लीन था। मैं भगवान् की पूजा कर उन्हें माला पहनाना भूल गया था और मस्तक पर मुकुट पहना दिया था। बाद में माला पहिनाते समय मुकुट के कारण गले में वह नहीं जा रही थी मैं कुछ सोंच ही रहा था कि मेरे कान में इनके शब्द सुनाई दिये कि 'डोरा तोड़.........।' वास्तव में यह मेरे उस पूजा तक पहुँच गये हैं अतः अब तो इन्हें शिष्य मानना ही होगा।

स्वामी रामानन्दजी का यह स्थान 'पञ्चगङ्गा' घाट पर उतरते समय घाट किनारे दाहिनी ओर 'गोपी गोविन्द' तीर्थ में था। 'गोपी गोविन्द' का यह मन्दिर सन् १९४६ ई० में घाट किनारे वाला धरहरा गिरने के कारण ध्वस्त हो गया। यह स्थान धरहरे के ठीक नीचे दक्षिण ओर था जो अब ऊपर से

ढालुआ दिखाई देता है। उस समय मिट्टी-पत्थर की ढेर में से 'कदम्ब-वृक्ष के नीचे भगवान् श्रीकृष्ण' की सुन्दर मूर्त्ति को जो अखण्डित दबी पड़ी थी भक्त लोगों ने निकाल कर इस स्थान से पूर्व ओर तथा पञ्चगङ्गा घाट पर उतरने वाली सीढ़ी से सटे बायीं ओर स्थित स्वामी रामानन्दजी की 'समाधि-स्थली' में लाकर स्थापित कर दिया।

स्वामी रामानन्दजी की समाधि इसी स्थान पर आज भी विद्यमान है। समाधि के ऊँचे पीठ पर चरणपादुका बनी है। इसके पूर्व-उत्तरी दीवाल में एक चेहरा मात्र है जिसे लोग 'कबीरदास का मुखौटा' कहते हैं। इस स्थान से पूर्व ओर सटा पत्थर का बना विशाल 'हजारा दीप' स्तम्भ है।

श्री वल्लभाचार्यजी 'महाप्रभूजी'

श्री महाप्रभूजी श्रीमद्वल्लभाचार्यजी का प्राकट्य संवत् १५३५ में चंपारन (मध्य-प्रदेश) में हुआ था। आपके पिताश्री का नाम श्री पं० लक्ष्मणभट्ट तथा माताजी का नाम श्रीमती इलम्मागारू था।

यज्ञोपवीत—अध्ययन स्थली

महाप्रभूजी अपने बाल्यावस्था में ही अपनी माता-पिता के साथ काशी पधारे थे। हनुमान घाट पर वे लोग ठहरे थे। यहीं पर महाप्रभूजी का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किया गया तथा महाप्रभूजी ने इसी स्थान पर रह-कर वेदारम्भ किया था।

इसी स्थान पर काशी के अनेक विद्वानों से महाप्रभूजी से शास्त्रार्थ किया था। आपकी प्रतिभा से विद्वद्गण अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्हें 'बाल-सरस्वती' नाम से सम्बोधित करने लगे।

२८ दिनों का शास्त्रार्थ

विद्याध्ययन समाप्त कर महाप्रभूजी अपने मामा के पास 'विजयानगरम्' (दक्षिण) नगर में गये। आपके मामा वहाँ के राजा के दानाध्यक्ष थे। मामाजी के साथ आप राज-दरबार में गये। महाराजा ने एक विद्वद्सभा बुलाई जिसमें 'महाप्रभूजी' ने विश्वस्वामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुसार 'शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद' की प्रतिष्ठापना की। इस विषय पर निरन्तर २८ दिनों तक महाप्रभूजी शास्त्रार्थ करते रहे। अन्त में विजय महाप्रभूजी की ही हुई। इस पर महाराजाधिराज श्री कृष्णदेवजी ने महाप्रभूजी को 'आचार्य' पद से अभिषिक्त किया। तभी से आप श्री का 'वल्लभाचार्य' नाम पड़ा। महाराजा ने सर्व-प्रथम सपरिवार आपसे दीक्षा ली। महाराजा ने अपने कर्त्तव्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो महाप्रभूजी ने राजनीति, धर्मोपदेश तथा भगवद्भक्ति का उन्हें उपदेश दिया।

महाप्रभूजी का त्याग

महाराजा ने आपश्री का कनकाभिषेक किया जिसमें सभी पात्र सौ मन सुवर्ण के थे। इसे आपने ब्राह्मणों में बँटवा दिया। भेंट में से सात मुद्रा को ही आपने लेकर भगवान् के कार्य में व्यय किया। इससे आचार्य श्री के त्याग एवं वैराग्य का पता चलता है।

विट्ठलनाथ का दर्शन

वहाँ से महाप्रभूजी पण्ढरपुर पधारे। वहाँ भगवान् पाण्डुरंग 'श्रीविट्ठलनाथ जी' का आपने दर्शन अर्चन किया। भगवान् ने उन्हें स्वप्न में 'विवाह करने का आदेश देते हुए कहा कि जाकर काशी में 'पञ्चनद तीर्थ' पर आपके सजातीय ब्राह्मण श्री देवणभट्टजी की कन्या 'महालक्ष्मी का पाणिग्रहण करो'।

विवाह स्थली 'पंचगंगाघाट'

भगवान् पाण्डुरंग का आदेश पाकर आप पण्ढरपुर से सीधे पुनः काशी पधारे। काशी में आकर आप पंचगंगा स्थित पं० देवणभट्टजी के निवास

स्थान पर गये और उनसे भगवान् के आदेश को कह सुनाया। देवणभट्ट को भी भगवान् ने स्वप्न देकर सारी बातें कह दी थी।

आषाढ़ शुक्ल ५, संवत् १५५५ को काशी में प्रख्यात 'बिन्दुतीर्थ' में श्री देवणभट्ट के निवास स्थान पर आपका शुभ विवाह सम्पन्न हुआ। आपके 'ब्राह्म विवाह' के समय शाखोच्चार में लिये गए दोनों कुल के नामों का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार है—महाप्रभूजी के प्रपितामह श्री पं० गणपति भट्ट, पितामह—श्री पं० वल्लभ भट्ट, पिता—श्री पं० लक्ष्मण भट्ट तथा कन्या सुश्री महालक्ष्मी के प्रपितामह— श्री पं० श्रीकण्ठ भट्ट, पितामह—श्री पं० गोविन्द भट्ट, पिता—देवण भट्ट।

'अग्निहोत्री' महाप्रभूजी

विवाहोपरान्त अपनी ससुराल में ही महाप्रभूजी ६ महीने तक रहे। इसी स्थान पर अपनी अग्निहोत्र ग्रहण किया और यज्ञ आदि कर्म सम्पादित करते हुए आपने अपने काका श्री पं० जनार्दन भट्ट की पुत्रवधू को यहीं दीक्षा दी।

वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य महाप्रभूजी ने ६ मास पर्यन्त इस पंचनद तीर्थ पर वास किया और नित्य बिन्दुतीर्थ में स्नान करते रहे जिसमें एक कार्त्तिक मास भी पड़ा था। इस स्थान पर रहकर वे नित्य उपदेश देते रहे। भविष्य के लिये इस स्थान के महत्त्व को आपने प्रस्थापित किया। आज भी आपके सम्प्रदाय के भक्तगण 'स्थान' को विवाह स्थली मानकर 'महाप्रभूजी की बैठक' मानते हुए उसकी नित्य सेवा पूजा करते रहते हैं। कार्त्तिक मास में तथा अन्य पर्वों पर इस स्थली पर झूला, श्रृङ्गार आदि किये जाते हैं। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार राज-भोग का भी प्रबन्ध है।

उक्त विवरण वल्लभ सम्प्रदाय के वर्तमान प्रमुख विद्वान् पं० माधवशास्त्री जी (खारी कूँआ) से प्राप्त हुआ है।

—o—

सन्त एकनाथजी

सन्त एकनाथजी महाराज महाराष्ट्र के सन्तों में अग्रगण्य माने जाते हैं। आपका जन्म संवत् १५६० के लगभग हुआ था। आपके पिता का नाम 'सूर्यनारायण' और माता का नाम 'रुक्मिणी' था। आप सन्त ज्ञानेश्वर के बड़े भाई थे। आप भगवान् श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। आपकी शिष्य-परम्परा में सन्त तुकड़ोजी आदि महान् सन्त हुए हैं।

सन्त एकनाथजी महाराज जब काशी पधारे थे, तब इसी पंचगंगा घाट स्थित उसी मठ में रहते थे जिसमें बाद में श्री तैलंग स्वामी जी रहने लगे थे। इस प्रकार 'पंचनद' स्थित आपका स्थान परम पवित्र माना जाता है।

बताया जाता है कि एक दिन पंचगंगा घाट पर स्नान करते समय गंगा में सन्त एकनाथजी महाराज को श्री कृष्ण भगवान् की साँवली व लुभावनी एक मूर्ति मिली, जिसके मस्तक पर 'शिव लिंग' स्थित रहा। उस मूर्ति को सन्तजी स्वयं ले आये और अपने निवास-स्थान में उसे स्थापित किया। वह मूर्ति आज भी उसी प्रकार देदीप्य- मान है और तैलंग स्वामी के मन्दिर के मुख्य द्वार में घुसने पर एकदम सामने दखाई देती है। भगवान् श्रीकृष्ण के मस्तक पर स्थित शिव लिंग का दर्शन पुजारी से आग्रह करने पर ही होता है।
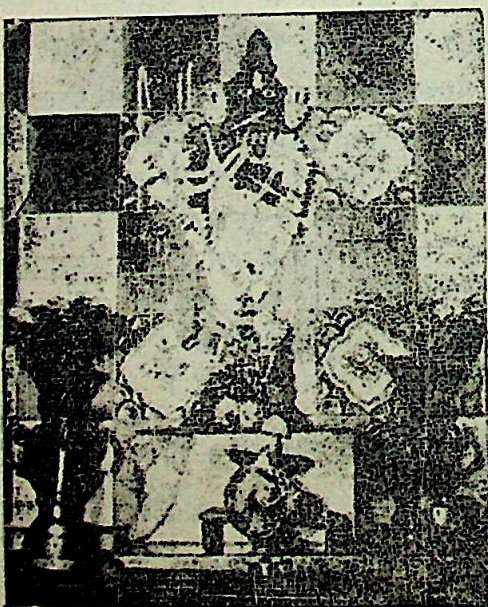
(आप सभी जानते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्येक बाल गोपाल रूप में मस्तक के ऊपर जो घुण्डी-सा गोल-गोल होता है वह बँधा केश नहीं होता, अपितु शिव लिंग होता है। उक्त कृष्ण की मूर्ति के मस्तक पर शिव लिंग स्पष्ट दिखाई दे रहा है।)

महाराष्ट्र के प्रायः सभी यात्री काशी के इस पंचनद तीर्थ स्थित 'सन्त एकनाथ' जी के परम पवित्र स्थान पर मस्तक झुकाने आज भी बड़ी श्रद्धा से आते हैं और श्री कृष्ण की मूर्ति व मस्तक के शिव लिंग का दर्शन करते हैं।

सन्त एकनाथजी महाराज ने अपने उपदेश में बताया है कि—'भगवान् के सगुण चरित्र का ही वर्णन करना चाहिये। सत्संग में अन्तःकरण से भगवान् का नाम लेना चाहिये और भगवान् के समक्ष आनन्द से झूमना चाहिये। प्रेम भरे भावों से ही वैराग्य के उपाय बताने चाहिये जिससे भगवान् की मूर्ति अन्तःकरण में बैठ जाय। विट्ठल का नाम लेने में जरा भी आलस्य नहीं करना चाहिये। जिसने एक बार श्रीकृष्ण रूप को देख लिया उसकी आँखें उन्हीं पर लग जाती हैं। नामदेव ने इन्हीं को 'बिठुला' कह कर इनकी स्तुति की है।

सन्तजी ने सारांश रूप में बताया है कि—'स्त्री, धन और प्रतिष्ठा ये तीन चिरंजीव पद की प्राप्ति में महान् विघ्न डालने वाले होते हैं। शुद्ध सात्त्विक वैराग्य से ही भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति होती है।' यही बात 'श्रीकृष्ण' ने उद्धवजी से कही है।

———

महात्मा श्री तैलंग स्वामी

जीवन झाँकी

संवत् १६६४ (बंगला संवत् १०१४) के पौष शुक्ल ११ को दक्षिण प्रदेश के विजियाना हुलिया नगर के एक धनी ब्राह्मण (जमीदार) के घर
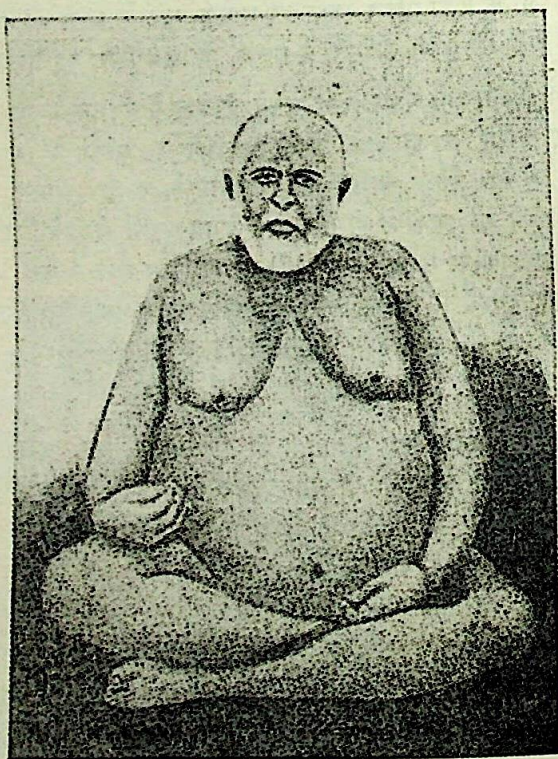
आपका प्रादुर्भाव हुआ था। आपकी माता का नाम विद्यावती तथा पिता का नाम नृसिंहधर था। 'शिव' की कृपा से इन्हें यह सन्तान हुई थी। अतः माता 'शिव राम' तथा पिताजी 'तैलंगधर' नाम से उन्हें पुकारते थे।

बाल्यावस्था से ही स्वामीजी अत्यन्त मेधावी थे। दूसरों के दुःख में स्वयं रो पड़ते थे। ९वें वर्ष में आपका यज्ञोपवीत हुआ था। प्रारम्भ से ही उनका मन वैराग्य की ओर था। उनकी ४० वर्ष की अवस्था होने पर माता का तथा ५० वर्ष की अवस्था होने पर पिता का स्वर्गवास हो गया।

माता की मृत्यु के बाद उनकी चिता की राख स्वामीजी ने अपने समस्त शरीर में पोत ली। कौपीन (लँगोट) धारण कर लिया और १० वर्ष तक वहीं श्मशान में ही आप रहे। वहाँ रहकर उन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली। तत्पश्चात् आप तीर्थाटन के लिए सभी तीर्थों में गये। आप इस यात्रा में 'कैलाश' मानसरोवर तथा तिब्बत तक गये थे। स्वामीजी के जीवन के चमत्कारों को प्रायः सभी भारतवासी जानते हैं। अपनी सिद्धि के बल पर वह असाध्य कार्य भी कर डालते थे। एक बार स्वामीजी ने नर्मदा के तट पर सात दिन तक चण्डी पाठ किया था। तब एक महापुरुष का उन्हें दर्शन हुआ और उनके सारे जटिल प्रश्न हल हो गये। ७८ वर्ष की अवस्था में (बँगला सं० १०६२ में) आपने भगीरथ स्वामी से दीक्षा ली। अपने तपोबल से आपने आठो सिद्धियों को प्राप्त कर लिया था।

काशी में आपने, अपना निवास-स्थान बिन्दुमाधव मन्दिर (जो अब मस्जिद बन गयी है) के पीछे चुना। पंचनद में स्नान करना तथा रात्रि में श्री कालभैरव की अन्तिम आरती के समय उनके मन्दिर में जाना आपका नित्य का कार्य था।

आपकी कृपा से पंचगंगा स्थित आपके मन्दिर में अनेक शक्ति यन्त्र आज भी विद्यमान हैं। २८० वर्ष की अवस्था पूर्ण कर आज से ८१ वर्ष पूर्व आप ब्रह्म में लीन हुए थे। आपके अनेक चमत्कारों की चर्चा आज भी काशी की गलियों में बड़े-बूढ़े लोग करते रहते हैं।

बाबा के मठ के आँगन में आजकल एक बहुत बड़ा शिवलिंग है जिसे आजकल के चार-पाँच आदमी मिलकर भी नहीं उठा सकते। यह शिवलिंग बाबा को पंचगंगा घाट पर स्नान करते समय मिला था। बाबा उसे अकेले

वहाँ से अपने स्थान पर लाये थे। वहाँ बहुत बड़ा अरघा बनवाकर उस 'लिंग' को स्वयं बाबा ने स्थापित किया था। इस लिंग को पंचगंगा पर मिलने के कारण बाबा ने तो 'पंचगंगेश्वर' नाम रखा था। पर उनके भक्तजन इसे 'तैलंगेश्वर' नाम से पुकारते हैं।

जहाँ यह लिंग स्थापित है वहाँ पहले एक बड़ा गड्ढा था। लोगों का कहना है कि जब कभी बाबा उस गड्ढे में आकर बैठ जाते थे तो उनके भक्त लोग हजार छिद्र वाला 'हजारा' उनके मस्तक के ऊपर टाँग देते थे। इसके बाद लोग, पञ्चगंगा से जल ला-लाकर उक्त हजारे में छोड़ते थे। इस प्रकार वह जल हजारे के छिद्र से गिरकर बाबा के शरीर पर पड़ता था। लोग अपने मन में यह कल्पना करते थे कि मानों वे साक्षात् 'विश्वनाथ' का अभिषेक कर रहे हैं।

बाबा के चमत्कार

बाबा सिद्ध थे। उन्होंने काशी में रहकर जो-जो चमत्कारिक लीलाएँ कीं हैं उसको काशी की जनता अच्छी प्रकार जानती है। बाबा के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं जिनमें से कुछ नीचे उद्धृत हैं :—

१—श्री रामकृष्ण परमहंसजी जब काशी आये थे तब बाबा को उन्होंने सर्व-प्रथम मणिकर्णिका घाट पर गर्मी के महीने में तपते हुए ऐसे बालू पर सोया देखा था जिस पर कोई पाँव रखकर एक मिनट खड़ा नहीं हो सकता था। परमहंसजी ने बाबा का आदर किया और उन्हें बड़ा माना। श्री रामकृष्णजी पायस (खीर) बनाकर ले आये और बाबा को भोग लगाया। बाबा ने उसे पान किया था। श्री रामकृष्ण परमहंसजी बाबा से बड़े प्रभावित थे।

काशी नरेश का आगमन

२.—एक बार महाराज काशी नरेश अपने अतिथि के साथ नौका पर बैठे बाबा का दर्शन करने के निमित्त आये थे। उस समय पञ्चगंगा घाट पर

जल में आसन मारे बाबा बैठे थे। महाराज की नौका घाट से दूर थी। बाबा बैठे-बैठे पानी में बढ़ते गये और नौका के पास पहुँच गये तथा उछल कर नौका पर जा बैठे। बताया जाता है कि बाबा ने महाराज के एक अतिथि के हाथ से उनकी रत्नजटित तलवार ले ली और उसे वहीं गंगाजी में डाल दिया। इस पर अतिथि महोदय के हृदय में बाबा के प्रति कुछ भावना अच्छी नहीं बनी। महाराज काशी नरेश ने उन्हें धैर्य रखने को कहा। इसी बीच नौका घाट किनारे आ लगी। बाबा ने नाव पर बैठे-बैठे जल में हाथ डालकर एक-सी दो तलवारें निकाली और अतिथि महोदय से अपनी पहचान कर ले लेने को कहा परन्तु वह अपनी नहीं पहचान सके। दोनों एक समान थीं। अतः वह निर्णय नहीं कर पाये कि उनमें कौन उनकी है। बाबा से उन्होंने पहचानने में अपनी असमर्थता व्यक्त की।

इस पर बाबा ने उनसे कहा कि जब आप नश्वर वस्तु को नहीं पहचान सकते तो फिर आप 'ईश्वर' को कैसे पहिचानोगे। इसके बाद उन्होंने राजा की तलवार उन्हें दे दी और गंगाकी तलवार गंगा के जल में पुनः डाल दी।

'मृत्युञ्जय'

३—बाबा के भक्त उन्हें 'मृत्युञ्जय महादेव' भी मानते थे। इस संबन्ध में लोगों ने बताया कि एक बार, बाबा को लोग भोग लगा रहे थे कि बाबा को उल्टी होने लगी। जिसमें दही और चिउड़ा निकला, इस पर भक्तगण आश्चर्य चकित होकर विचार करने लगे कि बाबा ने यहाँ तो दही-चिउड़ा खाया नहीं फिर यह कैसे निकल रहा है। इस पर बाबा ने कहा कि 'मृत्युञ्जय महादेव' में एक भक्त ने दही-चिउड़ा चढ़ाया है जिसमें चिउड़ा के धुले न रहने से उसमें लगी धान की भूसी मेरे गले में अटक गयी फलतः उल्टी हो गयी। इसके बाद उसमें से कुछ भक्त उठे और सीधे वृद्धकाल के बगल में 'महामृत्युञ्जय महादेव' के मन्दिर में गये और वहाँ उन्हें चढ़े हुए चिउड़े में 'धान की भूसी' मिली। बाबा का कथन सत्य निकला तब से लोग उन्हें 'महामृत्युञ्जजय' भी मानने लगे।

विश्वनाथ

४—बाबा साक्षात् 'विश्वनाथ' थे उन्हें लोग 'सचल विश्वनाथ' कहते थे। इस सम्बन्ध में एक घटना बतायी जाती है कि—बाबा एक समय दशाश्वमेध के पास प्रतिदिन लेटे पड़े रहते उसी मार्ग से एक स्त्री नित्य बाबा 'विश्वनाथ' का दर्शन व पूजा करने जाया करती थी। उसे नित्य बाबा सोये मिलते और वह बाबा को देखकर यही कहती रही कि—नंगे पड़े रहने से किसी को सिद्धि नहीं मिलती' इस प्रकार कहती हुई वह नित्य चली जाती थी। एक दिन स्वप्न में भगवान 'विश्वनाथ' ने उस स्त्री से कहा कि उस बाबा की सेवा करो जिसकी तुम उपेक्षा करती हो वही तुम्हारे पति के प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। बस क्या था। दूसरे दिन उसने जाकर बाबा को वैसे ही पड़ा देखा। उनकी वहीं नित्य पूजा करने लगी। एक दिन बाबा ने 'लोलार्क कुण्ड' (भदैनी के पास काशी में प्रथम सूर्य का स्थान है) में से बिल्वपत्र का भस्म निकाल कर उसे दिया और कहा कि—'इसे ले जाकर अपने पति के घावों पर लगा दे ठीक हो जायेगा।' उसने वैसा ही किया और उसका पति निरोग हो गया। अतः संख्या ३ और ४ की कथा से स्पष्ट हो जाता है कि बाबा 'मृत्युञ्जय' और 'विश्वनाथ' दोनों थे। अर्थात् इन दोनों में कोई भेद लोगों को नहीं समझना चाहिये।

कालभैरव में

५—बाबा नित्य प्रति रात्रि में ११॥ (साढ़े ग्यारह) बजे वाली आरती में श्री कालभैरवजी के मन्दिर में जाते थे। मार्ग में काठ की हवेली से घूमने पर भैरवनाथ वाली गली के मोड़ पर एक दूध की दूकान थी। कहते हैं कि उसकी मालकिन अपनी दूकान पर आये हुए दूध को बिना बेचे खूब औटा कर गरम रखती थी। उस समय तक वह दूध नहीं बेचती थी। जब बाबा मन्दिर से पौने बारह बजे अपने स्थान को लौटते थे तब वह बुढ़िया (अहीरिन) मार्ग में खड़ी होकर बाबा से दूध का भोग लगाने को कहती

थी। जिस दिन मन में आ जाता था उस दिन बाबा खौलते हुए दूध की कढ़ाई को उठाकर पी जाते थे चाहे उसमें २० सेर अथवा मन भर दूध क्यों न हो और वहीं पीकर अपने स्थान की ओर चल देते थे। इस पर वह ग्वालिन अपने को धन्य मानती थी। जिस दिन बाबा दूध नहीं पीते थे उस दिन बाबा के जाते ही भाँट की गली, कालभैरव मन्दिर और काठ की हवेली वाली गली से आदमी पर आदमी निकलने लगते थे और उसके यहाँ से सारा दूध खरीद कर ले जाते थे। यह कार्य बहुत थोड़े समय में हो जाता था और उसका सारा दूध बिक जाता था।

उक्त कथन से ऐसा मालूम होता है कि या तो उधर लोग इस आसरे में पहले से खड़े रहते हों कि यदि बाबा दूध नहीं पीयें तो उसे वे लोग 'बाबा का प्रसाद' समझकर तुरन्त ले लेते थे और इस प्रकार सारा दूध हाथों-हाथ बिक जाता था। अथवा बाबा की कृपा से उनके गण ही आकर भक्त बुढ़िया का सारा दूध बारी-बारी से ले जाते थे। यह रहस्य बना ही रहा! क्योंकि आस-पास वालों को तो वह बुढ़िया पहचानती थी वे थोड़े ही लोग होते थे। पर अधिकांश लोग अनजाने होते थे। कुछ वर्ष पूर्व तक उस 'भक्त बुढ़िया दूध वाली' के वंश के लोग बाबा के मन्दिर में नित्य आधा सेर दूध बाबा की मूर्ति को भोग लगाने के लिए भेजते रहे।

बाबा 'कीनाराम' के यहाँ

६—बताया जाता है कि बाबा तैलंगस्वामीजी एक बार 'बाबा कीनाराम' के अस्तर (स्थल), (सोनारपुर से आगे शिवाला महाल के सामने) गये। वहाँ जाकर बाबा, श्री 'कीनाराम' जी के सिंहासन पर बैठ गये जो उस समय खाली था। उनके शिष्यों को यह अच्छा नहीं लगा। इतने में 'कीनाराम बाबा' ने अपने शिष्यों को संकेत से मना किया।

दोनों 'बाबा' आपस में संकेत द्वारा बातें करने लगे। 'कीनारामजी' ने अपने शिष्य को संकेत किया जिस पर 'पाँच घड़ा भरा सुरा' लाकर शिष्यगण बाबा 'तैलंग स्वामी' के समक्ष रख दिये। बाबा ने उन पाँचों घड़ों की सुरा

को पी लिया। इसके बाद वहाँ से वह चल दिये। इस पर श्री 'कीनारामजी' ने बाबा के पीछे अपने शिष्यों को भेजा और कहा कि—'ये महात्मा अधिक पी गये हैं कहीं गिर नहीं जायँ, जाकर उन्हें उनके स्थान तक पहुँचा दो।'

बाबा वहाँ से चलकर अस्सीघाट पर पहुँचे। गंगाजी में उस समय बाढ़ थी। बाबा बढ़ी गंगाजी में कूद गये। वहाँ के डूबे-डबे बाबा पञ्चगङ्गा घाट पर निकले और आसनबद्ध वहीं घाट पर बैठ गये। जब कीनारामजी के शिष्य उन्हें वहाँ देखने पहुँचे तब उन्हें वहाँ पाया। ये शिष्य श्री कीनारामजी के दुबारा कहने पर पता लगाने पञ्चगंगा आये थे। वैसे वह तो समझ ही गये थे। श्री कीनारामजी इनका आदर व सम्मान करते थे।

दही वाले

७—एक बार काशी में दूध व दही का बड़ा अकाल पड़ गया था। उस समय एक दिन बाबा ने अपने स्थान के बाहर चबूतरे पर बैठकर एक अथरी दही मँगवाई और उसमें से एक पुरवे से काट-काटकर जितने भी लोग आये सबके हाथ दही बेचते गये। जिसने एक पैसे का माँगा उसे वही एक पुरवा दही और जिसने दो-चार-आठ आना या एक रुपये का लिया उसे भी वही एक पुरवा दही देते थे। चमत्कार यह हुआ कि एक ओर उस दिन प्रातःकाल से सायंकाल तक हजारों आदमियों ने बाबा से दही खरीदी। पर बाबा की वही एक अथरी ही दही रही। अन्त में उसमें से भी आधी अथरी दही बची ही रह गयी थी पर वहाँ कोई लेनेवाला ही नहीं बचा था। दूसरी ओर उधर जो लोग दही लेकर गये उनके घर पर पहुँचते ही जिसने एक पैसे की ली थी उसे वही एक पुरवा ही, जिसने अधिक की ली थी उसके यहाँ उसी अनुपात से अधिक दही हो जाती रही। अर्थात् एक रुपया वाले के यहाँ चौंसठ पुरवा दही हो जाती थी।

८—एक बार बाबा अपने मठ के द्वार पर बैठे थे और भक्त लोग उनके मस्तक पर जल चढ़ाते रहे इतने में एक बाहरी आदमी ने यह दृश्य देख अपने मन में सोचा कि इस भयंकर जाड़े के समय महात्मा पर जल चढ़ाया

जा रहा है अपने पास का नया ऊनी दुशाला बाबा के शरीर पर डाल दिया। बाबा ने शरीर हिलाकर उसे गिरा दिया। आगन्तुक को इस पर कष्ट हुआ कि बाबा को वह दुशाला उढ़ाया और उन्होंने उसे गिरा दिया। उसके मन में कुछ संकल्प-विकल्प होने लगा कि इतने में बाबा ने बगल वाली दालान में बैठे अपने प्रथम शिष्य, जिनके स्थान में बाबा का मन्दिर बना है 'श्री मंगलजी भट्ट' को संकेत किया। भट्टजी उसी दालान के पश्चिम वाली छोटी कोठरी में गये और उसमें से उसी रंग-रूप का चार जोड़ा अर्थात् आठ दुशाले बाबा के सामने लाकर रख दिये। बाबा उठकर उन दुशालों को वहाँ बैठे आठों ब्राह्मणों को स्वयं उढ़ाये। यह कौतुक देखकर आगंतुक बाबा के चरणों पर गिर पड़ा।

'एकनाथ'

उक्त कोठरी आज भी विद्यमान है। उसके उत्तर में श्रीकृष्ण भगवान की मूर्त्ति है जिसे ४०० वर्ष पूर्व महाराष्ट्र के महान् सन्त श्री 'एकनाथजी' महाराज ने स्थापित किया था। सन्त 'एकनाथजी' इसी मन्दिर वाले स्थान पर रहते थे। उस समय भी यह स्थान बड़ा पवित्र माना जाता था।

बाबा तैलंग स्वामी ने भी अपने लिये काशी में यही उत्तम स्थान "पञ्चनद' पर चुना।

बाबा का मन्दिर

बाबा का यह प्रसिद्ध मन्दिर दूधविनायक से और दुर्गाघाट की ओर से आनेवाली तथा पञ्चगङ्गा को जानेवाली गली के कोण पर स्वामी ब्रह्मानन्द के मठ के पश्चिम है तथा इसी मोड़ पर गली से नीचे 'पञ्चगङ्गेश्वर' (काशी खण्डोक्त) महादेव के ऊपर स्थित है। इसके पूर्व-दक्षिण भाग में पञ्चगङ्गा घाट को जाने का मार्ग है। आजकल यही मार्ग मन्दिर में जाने का मुख्य मार्ग है।

इस मुख्य द्वार से जो जंगले का है, भीतर जाते ही बायीं ओर एक छोटे

कमरे में बाबा का भव्य एवं विशाल चित्र लगा है तथा पास में बाबा की प्रायः सभी उपयोग में आनेवाली सामग्री सुरक्षित, भक्तजनों के अवलोकनार्थ रखी है। इन वस्तुओं में उनकी चरणपादुका (जोड़ी खड़ाऊँ) रुद्राक्षका बहुत बड़ा 'माल', 'रुद्राक्ष' का उनका 'मुकुट', 'कमण्डलु', और कुछ यन्त्र आदि हैं। इसके पश्चिम में दालान है जहाँ बैठे हुए भट्टजी से बाबा ने दुशाला मँगवायी थी। इस दालान के पश्चिम वही दुशाले वाली कोठरी है। इसके उत्तर तथा मुख्य द्वार के ठीक सामने सन्त 'एकनाथजी' द्वारा स्थापित 'श्रीकृष्ण' की साँवली-लुभावनी मूर्त्ति है। इनका दर्शन 'पञ्चगङ्गा' स्थित बिन्दुमाधव के द्वार से भी होता है। एक सीढ़ी उतरने पर दाहिनी ओर श्री भीष्म पितामह (शरशायी), हनुमान्जी की मूर्त्ति है तथा दो शिवलिंग है।

तैलंगेश्वर

आँगन के मध्य में बाबा तैलंग स्वामी द्वारा स्थापित विशाल अर्घे पर शिवलिंग है जिसे बाबा के शिष्य 'तैलंगेश्वर' नाम से पुकारते हैं। इसी स्थान पर गड्ढे में बाबा के बैठने पर लोग उनका 'पञ्चगङ्गा' के जल से अभिषेक करते थे।

इस लिंग के पश्चिम ओर दालान में दीवार से सटे बीच में गणेशजी की मूर्त्ति है तथा दो यन्त्र भी हैं। साथ ही इसमें 'धूतपापा' तथा 'दामोदर' की भी मूर्त्ति स्थापित हैं। इसमें एक शिवलिंग भी है। दालान के उत्तर पूर्व कोण में एक 'पद्म' के आकार का विशाल यन्त्र रखा है।

मंगलाकाली

इस दालान के उत्तर ओर 'महाकाली' की मूर्त्ति है। यह कालीजी बाबा की इष्ट देवी रही हैं। इन्हें बाबा 'मंगला काली' कहते थे। मंगला काली की बड़ी तेजोमय मूर्त्ति दर्शनीय है। मालूम होता है कि माँ काली कुछ वरदान देने के लिये बोलना चाहती हैं। देवी के दक्षिण ओर श्रीकाल-भैरव की मूर्त्ति स्थापित है।

बाबा की मूर्त्ति

मंगला काली से ५–७ हाथ ठीक पूर्व में बाबा 'तैलंग स्वामी' की 'पूर्णांग' पाषाण की मूर्त्ति सिद्धासन में बैठी है। बाबा की मूर्त्ति देखते ही बनती है। ऐसा लगता है कि मानों वह कुछ कहना ही चाहते हैं। बाबा की मूर्त्ति के सामने श्री दण्डपाणि की मूर्त्ति है।

दण्डपाणि के पूर्व ओर द्वार को खोलने पर बाबा की समाधिस्थली की ओर सीढ़ी द्वारा नीचे जाने का मार्ग है। कहा जाता है कि जब बाबा मूर्त्ति के स्थान पर बैठे आसन जमाये रहते थे, तो श्री मंगला काली यथा स्थान पीछे रहती थीं। परन्तु जब बाबा उठ कर नीचे जाते थे, तो भगवती 'मंगला काली' भी उनके पीछे-पीछे नीचे जाती थीं।

धूतपापा का उद्‌गम स्थल

इसी गुफा के पूर्वोत्तर कोण में काशीखण्डोक्त पंचगंगेश्वर महादेव का गली के नीचे वाला मन्दिर हैं। इसी मन्दिर को ही पूर्व वर्णित कथा प्रसंग के प्रथम कथा; ५९ वें अध्याय वाली पवित्र 'धूतपापा' का उद्‌गम स्थान माना जाता है।

पंडितराज राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ ने बताया कि इसी स्थान से 'धूतपापा' नद रूप में निकल कर 'विष्णु' अर्थात् बिन्दुमाधव के चरणारविन्द को पखारती, स्पर्श करती गंगा में जाकर मिलती हैं। इसी गुफा मार्ग से बाबा 'धूतपापा' के किनारे-किनारे गंगा तक 'गुप्त मार्ग' से जाते थे। यह मार्ग अब अन्धा हो गया है; परन्तु बाबा की गुफा सुरक्षित है। मन्दिर के स्थान की संख्या महापालिका के अनुसार को० २३।६५ है।

बाबा के मन्दिर में उनके वर्त्तमान सेवक पं० गोविन्दजी भट्ट अपनी पत्नी श्रीमती काशी देवी के साथ रहते हैं।

श्रीमती काशी देवी की ही कृपा से बाबा के सम्बन्ध में अधिकांश बातें ज्ञात हो सकी हैं। आपने यह भी बताया कि रविवार को तथा मंगलवार को

लोग अपने बच्चों को जिसे 'नजर' लगी हो या डरे बलक को लोग झड़वाने लाते हैं तथा बाबा के पास रखी भभूत जिसे बाबा के चरणों से स्पर्श करा कर दिया जाता है, ले जाकर उसके शरीर में लगाते हैं। तथा बाबा की मनौती मानते हैं। बाबा के भक्त आज भी उन पर विश्वास करते हैं, उनकी मूर्त्ति का दर्शन कर ही अपने को धन्य मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि बाबा आज भी दुखियों के आर्त्तनाद को सुन कर उनकी रक्षा करते हैं।

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराजजी भी बाबा को सचल 'विश्वनाथ' ही मानते हैं।

——०-—

समर्थ गुरु रामदासजी

छत्रपति शिवाजी महाराज के गुरु समर्थ गुरु रामदासजी का जन्म जाम्ब ग्राम (औरङ्गाबाद-दक्षिण) में चैत्र शुक्ल ६ संवत् १६६५ को हुआ था। आपका पूर्व नाम 'नारायण' था। आपके पिताजी का नाम पं० सूर्यजी पंत तथा माता का रेणूबाई था।

समर्थ गुरु रामदासजी ने कुछ समय तक इस 'पंचगंगा' क्षेत्र में निवास किया है। गुरूजी श्री मंगलागौरी जी के मन्दिर के पश्चिम रामघाट जानेवाले मार्ग में भीखाराम के राम मन्दिर में रहते थे। आपने श्री मंगलागौरीजी के मन्दिर में उत्तर-पश्चिम कोण में रामभक्त श्री हनुमानजी की मूर्त्ति स्थापित की है। प्रतिवर्ष चैत्र और आश्विन (कुआर) के नौरात्र में उक्त मन्दिर से प्रतिदिन प्रातःकाल समर्थ गुरु रामदासजी का चित्र तामजान पर रखकर गाजे-बाजे के साथ उक्त हनुमानजी के समक्ष लाया जाता है। थोड़ी देर भंजन आदि करने के पश्चात् उसी प्रकार पुनः चित्र को राम मन्दिर में लाया जाता है।

समर्थ गुरु रामदासजी महाराज भगवान् 'राम' के अनन्य भक्त थे। उनके अनुसार 'इस संसार में वही व्यक्ति धन्य है जो कि सदैव भगवान् के कार्य में अपने शरीर को लगाये रखकर कष्ट देता है, सदा 'राम' नाम का अखण्ड उच्चारण करता रहता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी का ऐसा दास ही इस असार संसार में धन्य होता है।' 'राम' नाम की महिमा का उपदेश देते हुए आपने कहा है कि 'किसी नाम-मन्त्र की तुलना 'राम' नाम से नहीं की जा सकती। यह बात भाग्यहीन तथा क्षुद्र मनुष्य की समझ में नहीं आती। देवाधिदेव महादेवजी भी विषपान के पश्चात् उससे उत्पन्न होने वाले दाह (कष्ट) को नाश करने के लिये औषधि रूप में 'राम' नाम का अखण्ड उच्चारण करते हैं। तब साधारण मनुष्य के लिये 'राम' नाम के उच्चारण की महिमा का क्या वर्णन किया जाय।

समर्थगुरु रामदासजी का देहावसान माघ कृष्ण ९ सं० १७३९ को हुआ।

बालाजी

तीन सौ वर्ष पूर्व दक्षिण के दो ब्रह्मचारी ब्राह्मण सगे भाई इसी पंचनद क्षेत्र में रहते थे, वे प्रतिवर्ष शारदीय नवरात्र में पैदल 'तिरुपति बाला जी' की (दक्षिण) दर्शनार्थ यात्रा करते थे। वृद्धावस्था में वे जाने में असमर्थ होने लगे इसपर वे बड़े दुःखी हो अश्रुपात करने लगे, तब भगवान् ने उन्हें स्वप्न में बताया कि 'मैं तुम्हारे पास में ही हूँ दुःखी मत होओ। स्वप्न में यह भी बताया कि मैं इसी पंचनद में हूँ। जब तुम लोग प्रातः स्नान करने जाओगे तब हम वहीं तुम्हें उपलब्ध होंगे।

स्वप्न देखने के पश्चात् वे बड़े प्रसन्न हुए और प्रातः स्नान करने गये तो डुबकी लगाते भगवान् की यह लुभावनी मूर्ति उनके हाथ में आई जिसे लाकर

वे लोग 'मंगलागौरी' के मन्दिर के दाहिनी ओर एक 'बटवृक्ष' के नीचे रख पूजन-अर्चन करने लगे।

संवत् १९३३ में श्रावण शुक्ल पंचमी को ग्वालियर महाराज ने अपने लिए बनवाये गये भवन में सुन्दर संगमरमर का सिंहासन बनवाया, तथा भगवान् की मूर्ति बट वृक्ष के नीचे से लाकर उसमें स्थापित कर दी। कहा जाता है कि जब महाराज गृह प्रवेश करने काशी आये तब उन्हें स्वप्न में भगवान् ने कहा कि 'मैं यहाँ बट वृक्ष के नीचे पड़ा हुआ हूँ अतः यह भवन मुझे दे दो।'

भगवान् के इस आदेश का महाराज ने पालन किया और उसी मूहूर्त में अपने गृह प्रवेश के स्थान पर भगवान् का प्रवेश कराकर उन्हें स्थापित किया था।

सिंहासन पर नीचे की ओर निम्नलिखित वाक्य संगमरमर के ऊपर लिखा है:—

॥ श्री व्यंकटेश पीठ तत्पद सेवक जयाजी भूमिपतेः ॥

॥ विप्रोऽन्नसत्रकार्याध्यक्षः काश्यां विनायको ॥

संवत् १९३३ श्रावण शुक्ल ५

सिंहासन पर भगवान् तिरुपति बालाजी बीच में विराजमान हैं। उनकी सांवली-लुभावनी मूर्ति दर्शकों के मन को मोहे बिना नहीं रहती। साथ में भगवान् के दाहिनी ओर श्री लक्ष्मी जी, बायीं ओर श्री पद्मावतीजी विराजमान हैं। तीनों मूर्ति एक ही शालिग्रामी पत्थर में हैं।

मूर्ति के दाहिनी ओर सोने के सूर्य और बांयी ओर चाँदी के चन्द्र भगवान् अपने रथों के साथ विराजमान हैं।

भगवान् को दक्षिण में 'श्री लक्ष्मी व्यंकटेश' भी कहा जाता है।

भगवान् की मूर्ति स्थापित कर महाराजा ने बड़ा भारी उत्सव किया। भगवान् के नित्यप्रति के निमित्त भोग-राग की उत्तम एवं प्रचुर मात्रा में व्यवस्था कर दी। मंदिर में एक विशाल 'क्षेत्र' (निःशुल्क भोजन करने)

की व्यवस्था भी की। इस क्षेत्र में जो पकवान बनता था वह भगवान् को पहले भोग लगता था तत्पश्चात् प्रसाद स्वरूप ब्राह्मण तथा अन्य दीन-दुखियों में वितरित किया जाता था। सभी प्रसाद पाकर तृप्त होते थे। पहले यह क्षेत्र दिन में दस बजे से चार बजे तक मुक्त द्वार रहता था इस बीच जो भी आता था उसे भोजन में प्रसाद दिया जाता था। भोजनार्थियों की संख्या हजारों में नित्य प्रति होती थी। बाद में परिस्थितिवश यह व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त होती गयी।

मन्दिर के बाहर मैदान में कूएँ के पास एक बहुत बड़ा जाता (गेहूँ पीसने की चक्की) पड़ा है जिसे बैल खींचते थे। इसी चक्की से पीसे आटे की रोटी बनती थी।

भगवान् का मन्दिर बड़ा ही जाग्रत स्थान है। कहते हैं कि जब कभी कोई अपवित्र अथवा रजस्वला स्त्री दर्शन के लिए मन्दिर में आ जाती है तो सिंहासन के पास एक सर्प विचरण करता दिखाई देता है, तब पुजारी समझ जाते हैं कि कोई 'अपवित्र' आया था। तत्काल पुजारी गंगा जी से जल लाकर मन्दिर में सर्वत्र छिड़क कर उसे पवित्र करते हैं।

इस समय पं० गोकर्ण विघ्नेश्वर भट्ट जी भगवान् की सेवा करते हैं। उन्हीं की कृपा से उक्त विवरण उपलब्ध हुआ।

मन्दिर की व्यवस्था एक सिंधिया देवस्थान न्यास (ट्रस्ट) द्वारा सम्पादित होती है। यहाँ व्यवस्थापक डा० समरबहादुर सिंह हैं।

धूतपापा व किरणा

बिन्दुमाधव घाट स्थित 'श्री महाप्रभुजी की बैठक' के नीचे घाट किनारे श्री मन्नी महाराज के घाट पर 'धूतपापा' की धारा का तथा बाला घाट पर मढ़ी में 'किरणा' की धारा का दर्शन आज भी सुलभ है। ये दोनों धाराएँ आगे बढ़ कर गंगाजी में मिलती हैं। इन्हीं दोनों धाराओं के बीच पंचगंगा घाट (कोनिया घाट) है जहाँ कार्तिक शुक्ल एकादशी को महाराज काशी नरेश प्रति वर्ष स्नान करते हैं।

बिन्दुमाधव का मन्दिर

बिन्दुमाधव का मन्दिर सन् १६६९ के पूर्व पंचगंगा घाट से रामघाट तक फैला हुआ था। इस मन्दिर के भीतर श्रीराम और मंगलागौरी का मन्दिर था। साथ ही इसमें पुजारियों के रहने के लिए आवासगृह भी बना था। अनुमानतः कहा जाता है कि इस मन्दिर को अम्बर के राजा मान सिंह ने बनवाया था। यह कब बनवाया गया था कहना असम्भव है। सन्त तुलसी दास जी के समय यह मन्दिर था।

सन् १६६०–६५ के बीच दो फ्रांसीसी विद्वान् अपनी यात्रा के सम्बन्ध में काशी आये थे, इनमें से एक विद्वान् तावेर्निये महोदय लिखते हैं कि 'बिन्दुमाधव' के मन्दिर की ख्याति समस्त भारत में 'जगन्नाथजी' के मन्दिर के समान उस समय थी। मन्दिर के प्रवेशद्वार से गंगा तक सीढ़ियाँ थीं। इनमें से कुछ सीढ़ियों पर अँधेरी मढ़ियाँ थीं। इनमें ब्राह्मण लोग रहते थे। वे बड़ी पवित्रता के साथ लोगों से छू जाने के भय से स्नान कर सीधे रसोईं बनाने में लग जाते थे।

'बिन्दुमाधव' का मन्दिर स्वस्तिक अथवा क्रास के रूप का बना था। इस मन्दिर की चारों भुजाएँ एक समान थी। एक घरहरा (गुम्बद) बीच में था उसके ऊपर अनेक पहलों वाला नोकदार शिखर था। प्रत्येक बाहुओं के अन्त पर भी धरहरे थे। इन पर चढ़ने के लिये बाहर से सीढ़ियाँ थीं। घरहरों तक पहुँचने के लिये बीच-बीच में कई अम्बारियाँ और झरोखे (ताखे) भी थे जिनसे भीतर ठंढी हवा जाती रहती थी। गुम्बद के नीचे और मन्दिर के ठीक बीच में सात या आठ फुट लम्बी और पाँच से छः फुट तक चौड़ी एक वेदिका थी जिसमें दो दंडे सीढ़ियाँ पादपीठ तक पहुँचने के लिए थीं। समय-समय पर उत्सवों के अवसर पर इन पादपीठों पर रेशमी और किमखाब के वस्त्र बिछाये जाते थे, उनपर सुनहले और रुपहले काम के आस्तरण भी कभी कभी बिछाये जाते थे। बाहर से मन्दिर के भीतर की मूर्त्तियाँ सीधे दिखाई देती थीं। स्त्रियाँ और लड़कियाँ, केवल एक जाति की

स्त्रियों को छोड़कर, बाकी सब मन्दिर के बाहर से ही दर्शन करती थीं। इस वेदिका पर की मूर्त्तियों में से एक मूर्त्ति पाँच या छः फुट की थी। इसका मस्तक और गला छोड़कर और कोई अंग नहीं दिखाई पड़ता था। क्योंकि मूर्त्ति का बागा सारे अंगों को ढके रहता था। तावेर्नियें लिखते हैं कि कभी-कभी इस मूर्त्ति के गले में सोने अथवा मानिक, मोती अथवा पन्ने की माला दिखाई पड़ती थी।

वेदिका की बायीं ओर गरुड़ की मूर्त्ति थी। जिसे ब्राह्मण को छोड़कर और कोई नहीं छू सकता था। उस समय ऐसा कहा जाता था कि इस गरुड़ पर चढ़कर भगवान् संसार का भ्रमण करते थे और यह देखते थे कि कहीं कोई अपने काम में ढिलाई तो नहीं कर रहा है या कोई किसी को कष्ट तो नहीं दे रहा है।

मन्दिर की पूजा

मन्दिर के प्रवेश द्वार और मुख्य द्वार के बीच एक दूसरी वेदिका पर पलथी मारे हुए संगमरमर की एक मूर्त्ति थी। तावेर्नियें ने देखा कि प्रधान पुजारी के लड़के पूजार्थियों द्वारा फेंके गये रेशमी वस्त्रों (रूमालों) को लोक कर भगवान् को स्पर्श कराकर पुनः उसे लौटा देते थे। पूजार्थी रेशमी वस्त्र के अतिरिक्त रुद्राक्ष, तुलसी, मूंगे, पीले अम्बर या फूल मालायें तथा फल-फूल भी फेंकते थे। पुजारी इन सब को भगवान् को भोग लगा कर उन्हें लौटा देते थे। इस देवता का नाम तावेर्नियें के अनुसार 'मुरलीराम' था।

मुख्य प्रवेश द्वार पर पुजारी जी एक थाल में चन्दन रखे बैठे रहते थे जो पूजार्थियों के मस्तक पर बारी-बारी से चन्दन लगाते थे। चन्दन का तिलक लगाने वाले श्रेष्ठ जाति के लोग माने जाते थे।

राम मन्दिर

तावेर्नियें लिखते हैं कि जयपुर के राजा द्वारा बनवायी पाठशाला के बायीं ओर (जिसे कंगन वाली हवेली कहते हैं) राम मन्दिर था। जिसे संभवतः

राजा जयसिंह ने बनवाया था। इस मन्दिर के सामने एक सभा मण्डप था। जिसमें बहुत से आदमी, औरतें, बच्चे, बड़े लड़के (सवेरे) दर्शन के लिये इकट्ठे होते थे। तावेर्नियें भी उसी समय एक दिन वहाँ पहुँचा। उसने चार-चार ब्राह्मणों के दो दलों को आरती लिये और बाजे बजाते देखा। इनमें से दो ब्राह्मण भजन गा रहे थे और उनके सुर में दर्शनार्थी भी सुर मिला कर गा रहे थे। इन दोनों दलों के लोगों के हाथों में मोरछल और चवर भी था जिसे वे हिला रहे थे जिसे कि यह समझा जाता था कि मन्दिर खुलने पर देवता को भक्तों से कष्ट न हो। अन्त में दो ब्राह्मण बड़े-बड़े घंटे बजाने लगते थे। फिर एक मुंगरी से द्वार खटखटाते थे और भीतर से छः ब्राह्मण पट खोल देते थे। द्वार से छः-सात फुट की दूरी पर एक वेदी थी जिस पर मंगला गौरी और सीता राम की मूर्त्तियाँ थीं। लोग दर्शन कर तीन बार दण्डवत करते थे। पुजारी पुष्पमाला देवता को स्पर्श करा कर लौटा देते थे। इसके बाद एक वृद्ध ब्राह्मण आरती करता देखा गया। इस कार्य में अधिक समय लगता था और बाद में मन्दिर बन्द हो जाता था। दर्शनार्थी सीधा-सामान, घी, तेल, दूध आदि भी चढ़ाते थे जिसे पुजारी ले लेते थे।

तावेर्नियें के अनुसार 'मंगलागौरी' स्त्रियों के लिए मुख्य देवी मानी जाती थीं।

तावेर्नियें लिखता है कि राजा को मन्दिर बनवाने और 'बिन्दुमाधव' के मन्दिर से मूर्त्ति लाने में पाँच लाख रुपया ब्राह्मणों और भिखमंगों को दान देना पड़ा था।

तावेर्नियें यह भी लिखता है कि 'कंगनवाली हवेली' की गली के दूसरी ओर रणछोड़ दास जी का मन्दिर था और उसी मन्दिर में गोपालदास (लाल) की मूर्त्ति थी। ये मूर्त्तियाँ सम्भवतः पत्थर की थीं।

फ्रांस के दोनों विद्वान् तावेर्नियें और बर्नियर ने काशी के शिवालयों पर अच्छा प्रकाश डाला है। तावेर्नियें ने 'बिन्दुमाधव' के मन्दिर के पास

'कंगन हवेली' में जयसिंह की संस्कृत पाठशाला का वर्णन किया है। तावेर्नियै लिखता है कि 'बिन्दुमाधव' मन्दिर के पास से ब्राह्मण लोग बड़े-बड़े घड़ों में गंगा के स्वच्छ भाग से जल भर कर ऊपर लाते थे तथा घड़ों के मुँह को केसरिया वस्त्र से बाँध कर उस पर सील-मोहर लगा कर उन घड़ों को देश के कोने-कोने में भेजते थे और इस प्रकार इस 'पंचनद तीर्थ' के जल से अधिक धन प्राप्त करते थे। कन्धे पर रख तीन-तीन, चार-चार सौ कोस तक ब्राह्मण इन घड़ों को लेकर जाते थे।

सन् १६६९ में मुगल सम्राट् औरंगजेब की आज्ञा से 'बिन्दुमाधव' का मन्दिर ध्वस्त किया गया था। मन्दिर के स्थान पर मस्जिद बनवायी गयी। यह कोई अच्छी तो नहीं, पर इसके दो धरहरे 'वेनीमाधो' के धरहरे के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। इनमें से एक गंगा की घाट के भाग का धरहरा ३ अक्टूबर, १९४९ में अपने से गिर गया और दूसरा गिरने लायक होने पर उसे गिराया गया। इन धरहरों की चौड़ाई जमीन पर सवा आठ फुट और सिरे पर साढे सात फुट थी, इनकी ऊँचाई १४७ फुट २ इंच थी। मस्जिद की कुर्सी गंगा से लगभग ८० फुट ऊँचे पर है।

बिन्दुमाधव की मूर्त्ति

भगवान् 'बिन्दुमाधव' (विष्णु) की मूर्त्ति के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध में बताया जाता है कि जिस समय औरंगजेब के आदेश से बिन्दुमाधव का मन्दिर व मूर्त्ति टूटने वाला था उस समय टूटने से एक दिन पूर्व ही पुजारियों ने भगवान् की प्राचीन मूर्त्ति मन्दिर से हटाकर लाल घाट स्थित बुचई टोला महाल में अपने भाई के यहाँ भेज दी तथा एक दूसरी मूर्त्ति लाकर वहाँ रख दी गयी।

दूसरे दिन जब मन्दिर मूर्त्ति तोड़ा गया तब मूर्त्ति के नीचे से रत्न आदि न मिलने पर औरंगजेब के अधिकारियों को सन्देह हुआ। उन्हें मूर्त्ति को हटा कर ले जाने का पता चल गया पर इधर पुजारियों को भी पता लग गया। जिस पर उन लोगों ने मूर्त्ति रातो-रात यहाँ से हटवा दिया।

कुछ लोगों का कथन है कि 'बिन्दुमाधव' की मूर्त्ति वहाँ से हटाकर भाँट की गली (चौखम्भा स्थित काठ की हवेली के पीछे) में ले जायी गयी। वहीं आज भी भक्त जन दर्शन करने के लिये प्रातः काल जाते हैं। यह मूर्त्ति दर्शनीय है।

कुछ लोगों के अनुसार 'बिन्दुमाधव' की असली मूर्त्ति लाल घाट बुचई टोला में है। इसके भोग-राग के लिए जयपुर से कई गाँव माफी में चढ़े हैं जिसकी सारी आमदनी आती है। इसके अध्यक्ष गोसाईं लक्ष्मीकान्त जी हैं।

इस सम्बन्ध में जो पता लगा वह यह है कि भांट की गली वाले मंदिर में कोई प्रमाण नहीं मिला केवल जनश्रुति ही उसकी पुष्टि करती है। परन्तु लाल घाट वाले मन्दिर में जयपुर महाराज के दरबार के अनेक पुराने कागज-पत्र, दरबारी-आज्ञा तथा अन्य कई प्रमाण ऐसे देखने को मिले जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यही वह 'बिन्दुमाधव' की मूर्त्ति है।

पंचनद पर भगवान् की पूजा को प्रधानता देते हुए पंच प्रतिनिधि ने पंचगंगा पर ही भगवान् बिन्दुमाधव की साँवली एवं लुभावनी मूर्त्ति स्थापित की। इस समय इन्हीं की प्रमुखता है वैसे जो लोग उक्त बातों को जानते हैं वह उन दोनों स्थानों पर भी जाकर भगवान् का दर्शन करते हैं।

इस समय पंचगंगा स्थित बिन्दुमाधव का मन्दिर जो कि प्राचीन मन्दिर (अब मस्जिद के रूप में खड़ी है।) के पूर्व ओर पास में ही स्थित है। कार्त्तिक मास में इस मन्दिर में नर-नारियों की प्रतिदिन अपार भीड़ होती है।

स्वामी ब्रह्मानन्द का मठ

स्वामी ब्रह्मानन्द का मठ पंचगंगेश्वर महादेव के ऊपर, पूर्व की ओर स्थित है। इसके पूर्व की ओर पञ्चगंगा घाट को जाने वाला मार्ग है तथा पश्चिम ओर महात्मा तैलंग स्वामी जी का मन्दिर है। इस मठ का मकान सं० के० २२।११ है।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी का पूर्व नाम पं० गोविन्द राजुल रामप्पा पन्तुलु, था। आप 'तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेदी' ब्राह्मण थे। आप गोदावरी जिले में एक स्कूल में अध्यापक थे। संन्यास ग्रहण करने पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने गया, नासिक, राजमण्डी (आन्ध्र) तथा काशी में भगवती 'गायत्री देवी' भगवान् श्री दत्तात्रेय जी तथा श्री आद्य शंकराचार्यजी की मूर्त्तियाँ स्थापित कर 'सनातन धर्म' के अनुरूप कार्य किया।

स्वामीजी केदार घाट स्थित शृङ्गेरी मठ के अध्यक्ष होकर काशी में पधारे। आपने 'शंकर विजय' नामक ग्रन्थ में भगवान् आद्यशंकराचार्यजी की वर्णित कथा के आधार पर काशी में आद्यशंकराचार्यजी जिन-जिन स्थानों पर वास किये हैं उनका शोध किया। बताया जाता है कि 'पञ्चगंगा घाट' पर इसी स्थान पर जगद्गुरूजी पधारे थे। अतः इस स्थान पर स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने गायत्रीं देवी, दत्तात्रेयजी तथा आद्यशंकराचार्यजी की मूर्ति संवत् १९८० के वैशाख शुक्ल पञ्चमी वृहस्पतिवार को स्थापित कर इस स्थान की पवित्रता और महानता पर प्रकाश डाला। इस सम्बन्ध में दो शिलालेख मंदिर के खम्भों में खुदे हैं।

इस मंदिर की व्यवस्था के लिए शृङ्गेरी मठ के जगद्गुरुजी ने २५,०००) रुपया केदारघाट स्थित मठ में जमा कर दिया जिसके व्याज से ७५ रु० प्रतिमाह उपलब्ध होता है।

शंकराचार्यजी की मूर्ति के बाँयी ओर स्वामीजी के शिष्यों ने स्वामीजी की भी मूर्ति स्थापित कर दी है।

स्वामीजी ने अपनी एक शिष्या के आग्रह पर उसी धन से मन्दिर के उत्तर ओर महर्षि 'याज्ञवल्क्यजी' तथा उनकी दोनों पत्नियों 'कात्यायिनी' और 'मैत्रेयी' की मूर्तियाँ ८ फरवरी १६३२ को स्थापित की। उक्त शिष्या का नाम पार्वतीअम्मा था वह शुक्लयजुर्वेदीय ब्राह्मण थीं।

इस मठ व मन्दिर के वर्त्तमान अध्यक्ष श्री स्वामी सदाशिव ब्रह्मेन्द्र सरस्वतीजी हैं। आपने ही उक्त बातें बतायी हैं।

काशी नरेश का स्नान

जहाँ 'धूतपापा' की धारा गङ्गा में मिलती है जिसे कोनियाघाट कहा जाता है उसी स्थान पर और काशी नरेश महाराजा श्री विभूति नारायणसिंह जी अपने पूर्वजों के अनुसार कार्त्तिक मास की शुक्ल एकादशी को स्नान करते हैं। उस दिन महाराज काशिराज अपने पार्षदों के साथ अपनी द्रुतगामी नौका (मोटर बोट) पर सवार होकर ब्राह्ममुहूर्त्त में अरुणोदय से एक प्रहर पूर्व पधारते हैं।

काशीराज अन्य काशी-वासियों के साथ इसी धूतपापा घाट पर विधि-पूर्वक स्नान करते हैं तथा वहीं अपनी दूसरी नौका 'सरस्वती' पर बैठकर 'धर्मनद' में प्रातःकाल का सन्ध्योपासन, जप, तर्पण आदि नित्य कर्म सम्पादित करते हैं। पूजन आदि से निवृत्त होकर धवल सरस्वती पर खड़े होकर उपस्थित अपार जन-समूह को दर्शन देते हैं।

इस समय 'हरहर महादेव' के गगन भेदी ध्वनि से आकाश गूँज उठता है। लोग प्रातःकाल अपने बीच महाराज काशी नरेश को पाकर समझते हैं कि इस पवित्र धर्मनद में भगवान् 'विश्वनाथ' अपने प्रतिनिधि के रूप में साक्षात् खड़े हैं। महाराज काशिराज 'सरस्वती' पर से पुनः अपने 'द्रुतगामी' नौका की छतपर रखी पीठिका (कुर्सी) पर विराजते हैं तथा उस नौका से राजघाट तक जाकर असी घाटों तक उपस्थित काशी वासियों को दर्शन देते हुए तथा काशी का दर्शन कर एवं घाटों पर के स्नानार्थियों के स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ का अवलोकन करते हुए अपने दुर्ग (राजभवन) को चले जाते हैं।

देववाणी

अपनी प्राचीन संस्कृति के उत्तम सन्देश को देने वाली देववाणी 'संस्कृत' भाषा का पोषण काशी में जितना पंचनद क्षेत्र में हुआ है और हो रहा है उतना अन्य क्षेत्र में नहीं। मानव जीवन के महान् आदर्श की प्राप्ति का मार्ग केवल संस्कृत भाषा के अध्ययन एवं मनन करने से ही प्राप्त होता है। अतः जहाँ इस क्षेत्र के अधिकांश गृहों में वेदपाठी रहते हैं वहीं इस क्षेत्र में दो महाविद्यालय भी हैं जो निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

आज के पाश्चात्य एवं भौतिकवादी सभ्यता के चकाचौंध से दूर रह कर निम्नलिखित विद्यालय प्राचीन ऋषिकुल की परम्परा बनाये रखने में चेष्टा-शील हैं। यह परम्परा तभी जीवित रह सकती है जब समाज पूर्णरूप से इसके पालन-पोषण के लिए ध्यान दे। क्योंकि आज के युग में संस्कृत भाषा, वेदाध्ययन और वह भी प्राचीन परिपाटी के अनुसार करने वाला बिना किसी लोभ के नहीं करता। अतः पढ़ने वाले छात्रों को छात्र वृत्ति, निःशुल्क आवास, निःशुल्क भोजन वस्त्रादि का प्रबन्ध होना परमावश्यक है। जितनी अधिक और सुन्दर व्यवस्था इन बातों की होगी उतने ही अधिक विद्वान् 'देववाणी' संस्कृत के निकलेंगे।

विद्यादान से उत्तम दूसरा कोई दान नहीं है। परन्तु आज की परिपाटी में विद्यादान अर्थकरी बनकर क्रय-विक्रय के चक्कर में पड़कर एक दम बाजारू बन गयी है फलतः वैसे ही उसके फल समाज के सामने हैं। अधिकांश पथ-भ्रष्ट, धर्मभ्रष्ट हो रहे हैं।

काशी विद्यादान की केन्द्र रही है और वह भी देववाणी संस्कृत के अध्ययनाध्यापन के कारण। अस्तु काशी में संस्कृत के अध्ययनाध्यापन की प्रचुरता के निमित्त समाज के प्रत्येक वर्ग का कर्त्तव्य है कि अधिक से अधिक धन दान देकर प्राचीन परिपाटी से 'देववाणी' के विद्यामन्दिरों को परिपूर्ण करें। तभी समाज में धर्म, कर्म जीवित रहेगा। अच्छे कर्म करने से ही धर्म की स्थापना होती है और धर्म की स्थापना से सबका 'जय' अर्थात् मंगल

होता है और होगा। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में यही कहा है कि—'यतो धर्मस्ततोजयः'।

अतः काशी के विभिन्न संस्कृत विद्यालयों को मुक्त हस्त से दान देना चाहिए।

साङ्गवेद विद्यालय

रामघाट स्थित श्री वल्लभराम शालिग्राम साङ्गवेद विद्यालय की स्थापना संवत् १९७७ में हुई।

विद्यालय के प्रेरणादायक महामहोपाध्याय पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ जी थे। आप काशी में वेद संरक्षण के लिए अत्यधिक चिंतित थे। काशी में जहाँ अन्य भाषा और साहित्य उत्थान के लिए सस्थायें थीं वहीं 'वेद' की कोई संस्था नहीं थी।

ईश्वर की कृपा हुई आप के भक्त पं० विहारीलाल जी मेहता 'वेद' के संरक्षण के लिए उस समय तैयार हुए और विद्यालय के लिए अपने मातुल (मामा) स्वर्गीय श्री बल्लभराम जी के स्मारक रूप में लाखों रुपये का एक न्यास (ट्रस्ट) बनाया। इसका तत्कालीन काशी नरेश महाराजा श्रीप्रभुनारायण सिंह जो ने स्थायी सभापति होना स्वीकार किया। साथ ही महाराज के कर-कमलों द्वारा विद्यालय की स्थापना हुई थी। तब से प्रति वर्ष परम्परागत महाराज काशी नरेश ही इसके अध्यक्ष चले आ रहे हैं। वार्षिकोत्सव महाराज काशी नरेश की ही अध्यक्षता में प्रति वर्ष माघ शुक्ल त्रयोदशी को मनाया जाता है।

इस विद्यालय में वेद की सभी शाखाओं का, न्याय आदि शास्त्र, व्याकरण की उत्तमोत्तम अध्ययन तथा अध्यापन की व्यवस्था है। इसमें 'गणेशोत्सव' के समय तथा विभिन्न पर्वों तथा अवसरों पर विद्वत् सभाएँ तथा प्राचीन परिपाटी से शास्त्रार्थ भी होते रहते हैं तथा विद्वानों का सम्मान होता रहता है।

विद्यालय के प्रमुख आचार्य, विद्वत् समाज के प्राण, काशी के गौरव, ब्रह्ममूर्ति पद्मभूषण पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्राविड़ हैं। आप प्रातः स्मरणीय

पं० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ जी के अंश (पुत्र) हैं। आप की देख-रेख में विद्यालय से अनेक गण्यमान विद्वान् बने तथा बन रहे हैं।

'देववाणी' संस्कृत का यह विद्यालय अपने में पूर्ण विश्वविद्यालय है। यहाँ की परीक्षा शलाका पद्धति से होती है जिसमें विद्वानों के समक्ष प्रश्नोत्तर मौखिक होता है तथा उसमें उत्तीर्ण छात्रों एवं स्नातकों को वर्षासन भी दिया जाता है। इस विद्यालय का अपना एक सरस्वती मन्दिर भी 'लक्ष्मण पुस्तकालय' के नाम से स्थापित है जिसमें अनेक बहुमूल्य एवं दुर्लभ ग्रन्थ संगृहीत हैं।

विद्यालय के ही संरक्षण में 'विशुद्ध संस्कृत विद्यामन्दिर कोष', 'शास्त्र रक्षा समिति', 'श्री गीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा', 'राजनीति शिक्षा विभाग', 'उपासना विभाग' आदि विभागों के साथ-साथ आयुर्वेद, एलोपैथी तथा होमियोपैथी का चिकित्सालय निरन्तर उन्नति करता जा रहा है। इसका एलोपैथी चिकित्सालय बहुत बड़ा है तथा गंगा तट पर स्थित शोभायमान हो रहा है एवं डा० कौशलपति तिवारी की अध्यक्षता में जन सेवा में तत्पर है।

अद्भुत संग्रह

इस विद्यालय में विशिष्ट विद्वानों का तैल चित्र तथा प्रतिमूर्ति (फोटो) का बहुत बड़ा संग्रह है जो कि विद्यालय के प्रांगण में लगे हैं। इन विभूतियों का नाम स्मरण और दर्शन कर लोग अपने को धन्य मानते हैं। इस प्रकार विद्वानों का अद्भुत् चित्र संग्रह यहाँ उपलब्ध है जो कि किसी अन्य विश्व-विद्यालयों में भी नहीं पाये जाते। इसी प्रकार 'विद्या देवताओं' के भी चित्र यहाँ के सिवाय अन्यत्र देखने को सुलभ नहीं है।

वर्तमान काशी नरेश महाराज श्री विभूति नारायण सिंह जी के शब्दों में यह विद्यालय 'दुर्लभ वस्तु को सुलभ करता है।'

मेहता परिवार वर्तमान समय में पं० गिरधारी लाल जी मेहता के अधीन रहकर इस विद्यालय की अपूर्व सेवा कर रहा है। विद्यालय के सचिव श्री पं० उदय कृष्ण जी नागर हैं।

—:o:—

श्री रामानुज संस्कृत महाविद्यालय

दूधविनायक महाल में यह विद्यालय स्थित है। इसकी स्थापना संवत् २००१ की माघ सुदी ५ को (दिनांक १८-१-१९४५) को ब्रह्मीभूत जगद्गुरु रामानुजाचार्य (काशीपीठ) श्री १००८ स्वामी श्री देवनायकाचार्य जी ने की थी। तब से यह विद्यालय निरन्तर गतिमान् हो रहा है। विद्यालय जिस भवन में स्थित है वह उसका अपना है। इसके प्रथम खण्ड में विद्यालय लगता है तथा ऊपर के खण्डों में छात्रों के लिये आवास का प्रबन्ध है।

विद्यालय में आश्रम धर्मानुकूल वेद, व्याकरण, न्याय, साहित्य, श्रीरामानुज वेदान्त, पुराणेतिहास आदि विषयों की शिक्षा 'देववाणी' में दी जाती है। विद्यालय, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की परीक्षाओं से सम्बद्ध है। इसमें बाल-विद्यालय भी है, तथा ५० छात्रों के आवास का स्थान है। छात्रों के लिये जो कि छात्रावास में रहते हैं निःशुल्क भोजन की व्यवस्था है तथा आवश्यकता पड़ने पर औषधि के लिये एक औषधालय भी स्थापित है।

विद्यालय के लिये नगवा में बहुत बड़ी जमीन ली गयी है जहाँ इसका नया भवन बनने वाला है।

विद्यालय के वर्तमान अध्यक्ष काशी के गौरव श्री किशोरी रमणजी 'रईस' हैं। बम्बई का सोमानी परिवार तथा अन्य मारवाड़ी धनीमानी इसकी सहायता में तत्पर हैं। इसकी हर प्रकार से सहायता अपेक्षित है। इस विद्यालय के अनेक मेधावी छात्र देश के विभिन्न अंचलों में पूजनीय हो रहे हैं। वर्तमान मन्त्री श्री नारायणदास गिनोड़िया हैं, आपके पूर्ण प्रयास से यह विद्यालय खड़ा हो सका है।

—:o:—

लछमन तमोली

सांगवेद विद्यालय से लगे शिवालय के सामने ही कोने में लछमन तमोली की पान की दूकान थी। बालाजी चेत्र से जब साचात् मुक्ति द्वार-ब्राह्मण लोग भोजन कर वहाँ से सैकड़ों की संख्या में निकलते थे तब उन सबको यह लछमन तमोली बिना पैसा लिए पान खिलाते थे। नित्य जितने भी भूखे इनकी दूकान पर आते थे सबको भरपेट सत्तू खिलाते रहे। प्रतिवर्ष रथयात्रा का उत्सव भी यह बड़े धूमधाम से मनाते थे। इन्हें कुछ मन्त्रों की भी सिद्धि थी जिनके द्वारा लछमन तमोली 'कामला' इत्यादि रोगों की चिकित्सा झाड़-फूक से करते थे। नित्य ही इनकी दूकान के आगे ऐसे रोगियों की भीड़ लगी रहती थी। इन्हें अपना कोई नहीं था फलतः अपनी कमाई के दो मकान इन्होंने ट्रस्टी बनाकर उन्हें सौंप दिया, बाद में वे मकान ट्रस्टियों ने वल्लभराम शालिग्राम सांगवेद विद्यालय को सौंप दिये।

काशी

काशी के विद्वान् साहित्यकारों में अपनी लेखनी द्वारा काशी के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं तथा उनकी दृष्टि में 'काशी' कैसी है आदि का भी उल्लेख यहाँ इस पुस्तक में करना आवश्यक समझता हूँ। ताकि लोग वर्तमान साहित्यकारों के मनोभावों से भी परिचित रहें।

श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ की दृष्टि में—

जैसे साड़ी के किनारे पर बूटियाँ होती हैं वैसे ही गंगा के किनारे मन्दिर शोभायमान हैं।

पंचगगा घाट पर वेनीमाधो का मन्दिर है जिसमें भगवान् की साँवली व लुभावनी मूर्ति है। आगे लक्ष्मणबालाजी का मन्दिर है। मन्दिर के एक ओर सोने का सूर्य और दूसरी ओर चाँदी का चन्द्रमा है। इसे महाराजा ग्वालियर ने बनवाया था। इसके पास ही ग्वालियर के दीवान बालाजीवन जठार का जड़ाऊ मन्दिर है। सजावट और जड़ाऊ कार्य देखने लायक हैं। यहाँ के देवता संगीत के अत्यन्त प्रेमी हैं। कार्त्तिक में नगर के गवैये संगीत के मेघ से अपनी अर्चना करते हैं। ग्वालियर के दीवान दिनकर राव का बनवाया राममन्दिर भी है। सुन्दर सिंहासन पर राम लक्ष्मण तथा जानकी विराजमान हैं।

आदरणीय गौड़ जी जहाँ इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य से इस 'पंचनद' क्षेत्र की जानकारी देते हैं वहीं अपने विनोदी स्वरूप को भी इन शब्दों के साथ प्रकट करते हुए हम सबका मनोविनोद भी करते हैं। आप लिखते हैं कि 'हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता'—काशी के मन्दिरों की कथा भी हनुमान जी की पूँछ के समान बढ़ती जाती है। 'लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्' तब भी कितने कागज भर जायँगे, कहा नहीं जा सकता।

आचार्य श्री शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र काशिकेय' (गुरु बनारसी) के शब्दों में—

बनारस की गलियों का भूगोल बदल चला है पर इतिहास नहीं बदला मकानों का नक्शा बदल गया, पर उसमें रहने वाले नहीं बदले। गलियों की चाल बदल गयी, पर चलन वही है। इन गलियों के नाम इतिहास के एक पृष्ठ हैं। जैसे नवाबगंज में पहले अवध के नवाब सआदत अली रहते थे और बगल में जहाँ उनके खोजा ठहरे वह स्थान आज भी खोजवाँ नाम से बाजार प्रसिद्ध है।

अन्य स्थानों पर लोग जीविका खोजने और वहाँ जीने के लिए जाते हैं परन्तु 'काशी' ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ लोग 'मुक्ति' खोजते हुए प्रायः

यहाँ मरने के ही लिये आते हैं। चूँकि यहाँ के प्रधान देवता महादेव हैं, अतः यहाँ की गलियों में उनके वाहन नन्दी आनन्दी मुद्रा में स्वच्छन्द विचरण करते हैं सबसे बड़ी बात यहाँ की यह है कि जब दुनिया के अन्य नगर व्यवसाय आदि के चक्कर में पड़ कर बिल्कुल स्वार्थी हो जाते हैं, वहाँ काशी में परमार्थ भाव बराबर बना रहता है। इसलिये यहाँ के लोग परोपकारी बनने की दूसरों को उपदेश देते हैं।

मोहनलाल गुप्त (भैयाजी बनारसी) की दृष्टि में—

काशी के मस्त साँड़ और अलमस्त नागरिकों को मस्ती के अवतार बाबा विश्वनाथ का प्रसाद प्राप्त है। काशी के जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते हुए श्री गुप्त जी ने लिखा है कि यह कहावत ठीक है कि—

'चना चबैना गंग जल जो पुरवैं करतार।
काशी कबहुँ न छाँड़िये, विश्वनाथ दरबार ॥'

यहाँ का अँगोछा राष्ट्रीय वेशभूषा है। गंगा में गोते लगाना, बूटी छानना और पान चबाना यह काशी वासियों का दैनिक कार्य है। काशी का 'क्लबघर' यहाँ के पान की दूकानें हैं। यहाँ वालों की सुरुचि, सुस्वादु, सफाई, साफा-पानी और सौन्दर्य प्रेम तो जग-जाहिर है।

गंगा की लहरों ने काशी के घाटों की सीढ़ियों पर इतिहास लिखा है। भारत की सभ्यता-संस्कृति का अमरकोष काशी में है। किसी को यहाँ गन्दगी दिखाई देती है तो बहुतों को आत्मिक शान्ति भी मिलती है। यहाँ के लोगों का पुरातनप्रेम, पुरानापन ही काशी की जान है। अधिक भाग गलियों में बसा है। गलियों का अच्छा चक्रव्यूह यहाँ देखने को मिलता है।

भागीरथी गंगा शंकर की नगरी में शान्तभाव से नतमस्तक हो बही चली जा रही हैं। भारत की जीवन-गंगा काशी में अपना उन्मुक्त हास बिखेरती है। तट की विशाल अट्टालिकायें गंगा के दर्पण में अपना मुख निहारती हैं।

सैकड़ों विद्युत व हजारों आकाश दीप मानों गंगा की आरती उतारते हैं। ये दीप हिलते जल में ऐसे लगते हैं मानों जलपरियाँ नाच रही हैं।

गुप्त जी आगे लिखते हैं कि धनुषाकार नगरी गंगा के कटि की मेखला बनी है। जब लोग रेशमी रजाई में पड़े रहते हैं तब कार्त्तिक मास की सिहराती रात में कोमलांगियाँ भोर में गंगा के शीतल जल में पंचगंगा घाट पर स्नान करती हैं। प्रातः काल घंटा-घड़ियाल का बजना, हर गंगा, आदि का घोष सुनाई पड़ना, स्नान-ध्यान पूजा-पाठ आदि का क्रम जारी होता है।

'हर-हर महादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गंगे' का अद्‌भुत नाद चित्त को प्रसन्न कर देता है।

कार्त्तिक मास में पंचगंगा घाट का स्नान, दीपमालिका की पूर्णिमा की शोभा अवर्णनीय होती है। दुर्गाघाट की मुक्की देखकर आप अमेरिकी फ्री स्टाइल की कुश्ती और बाक्सिंग भूल जायेंगे।

अपनी पुस्तक 'काशी अतीत और वर्तमान' में श्री विश्वनाथ मुखर्जी लिखते हैं कि—वेनीमाधव का धरहरा जिसमें गंगा की ओर वाला धरहरा ३ अक्टूबर, १९४९ को गिर गया और दूसरे को खतरनाक होने पर गिरा दिया गया। तट से घाट और पुश्ता मिलाकर ये तीन सौ फुट ऊँचे थे। इस धरहरे के संबंध में कहा जाता है कि इसकी छतरी से दिल्ली के दीपक दिखलाई पड़ते थे। उस समय मीनारें २०० फुट ऊँची थीं, बाद में ५० फुट गिरा दिया गया था।

मुखर्जी लिखते हैं कि 'धरहरा' जिसका वास्तविक नाम 'वेनीमाधवजी का देवरा है'—संस्कृत शब्द 'देवग्रह' का अपभ्रंश 'देवरा' है, राजपूताने में शिखरवाले मन्दिर को 'देवरा' कहते हैं।

तुलसी जी की आरती

आरती तुलसा करौं तुम्हारी

लम्बी-लम्बी डार हरिअर पाती

माला-फूल चढ़ै दिन राती

जो नर तुलसा जी की आरती गावैं

बस बैकुण्ठ बसेरा पावैं

आरती तुलसा .. ॥

—o—

अन्न की आरती

आरती अन्न देव करौं तुम्हारी

अन्नहि गावें अन्न बजावै

अन्न बिना मोहि नींद न आवै

जँह-जँह लगी अन्न की ढेरी

साधू सन्त करैं सब फेरी

चार सबेरे चार दुपहरिया

चार सांझ के देहु मुरारी

यह बारह में एकको घटिहैं

आपन माला लेहु मुरारी

आरती अन्न देव करौं तुम्हारी ॥

सम्पूर्ण काशीखण्ड के लिये स्थायी ग्राहक बनें

सम्पूर्ण काशी खण्ड कम से कम २५ भागों में छप रहा है। अतः १) रुपया जमाकर स्थायी ग्राहक की रसीद प्राप्त कर लें। स्थायी ग्राहकों को ५ पैसा प्रति भागों के मूल्य में छूट होगा तथा स्थायी शुल्क अन्तिम भाग के मूल्य में बाद कर दिया जायेगा।

व्यवस्थापक—
श्री भृगु प्रकाशन